आधुनिक जगतमें गांधीजीकी कार्य-पद्धतियां

प्यारेलाल

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद-१४

भूमिका*
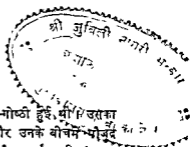
जनवरी १९५३ में दिल्लीमें एक विचार-गोष्ठी हुई थी। उसका विषय यह था कि विश्वके राष्ट्रोंके भीतर और उनके बीचमें मौजूद तनावको मिटानेमें गांधीजीकी विचारधारा और कार्य-पद्धतियां कहां तक सहायक हो सकती हैं। इस गोष्ठीमें ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय विचारकोंकी मंडली इकट्ठी हुई, जो अपने-अपने क्षेत्रमें ऊंचा स्थान रखते हैं। उनके धार्मिक विश्वासों, सामाजिक परम्पराओं, आर्थिक परिस्थितियों और शासन-प्रणालियोंकी पृष्ठभूमियां भिन्न-भिन्न और बेमेल थीं, लेकिन सबका एक समान लक्ष्य यह था कि विश्वमें शान्ति स्थापित हो और वे सब यह खोज करनेको उत्सुक थे कि गांधीजीकी कार्य-पद्धतियोंसे यानी सत्य और अहिंसाके प्रयोगसे वह लक्ष्य कहां तक सिद्ध किया जा सकता है। इसलिए जब मेरे पास इस गोष्ठीमें भाग लेनेका निमंत्रण आया, तो मैं इनकार नहीं कर सका।

प्रतिनिधियोंको इस गोष्ठीमें विचार करनेके लिए गांधीवादी दृष्टिके विविध पहलुओंमें से किसी एक पर निबंध पेश करना था। मैंने सोचा कि सबसे अच्छा योग इस गोष्ठीमें मैं यही दे सकता हूं कि संक्षेपमें गांधीजी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा-शास्त्रकी अधिकसे अधिक सम्पूर्ण रूपरेखा रख दूं और यह बता दूं कि उस शास्त्रका स्वरूप क्या है, उसका क्षेत्र कितना व्यापक है, उसके प्रयोगकी पद्धतियां क्या हैं और आजके संसारके सामने आनेवाली विविध समस्याओंके सम्बन्धमें वे किस तरह काम करती हैं। यह पुस्तिका इसी प्रयत्नका फल है।

पुस्तिकाका यह दूसरा संस्करण कुछ संशोधनोंके साथ प्रकाशित हो रहा है। इस संशोधन-कार्यमें सन्त निहालसिंहजीने जो सहयोग दिया, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।

नई दिल्ली, २९-१२-'५८ प्यारेलाल

* मूल अंग्रेजी पुस्तकके दूसरे संस्करणकी भूमिका।

अनुक्रमणिका

आधुनिक जगतमें गांधीजीकी कार्य-पद्धतियां

१

हम बढ़ते हुए तनावके जमानेमें रह रहे हैं — ये तनाव समुदाय-समुदायमें, वर्ग-वर्गमें और राष्ट्र-राष्ट्रमें, सर्वत्र मौजूद हैं। विचारोंमें तो मानव-जाति आगे बढ़ी है। समानता, भ्रातृभाव और विश्वशान्तिके आदर्श जितने सर्वव्यापक रूपमें आजकल माने जाते हैं उतने शायद पहले कभी नहीं माने गये; फिर भी अणुबमके खतरेके कारण मानव-जाति या मानव-मूल्य सर्वनाशके किनारेके जितने पास आज खड़े हैं उतने पहले कभी नहीं थे। इस पहेलीका रहस्य साध्य और साधनोंके बीच पाये जानेवाले उस विरोधमें है, जो हमारे इस युगका खास लक्षण है।

जब हम किसी समस्याको निपटानेमें पशुबलका प्रयोग करते हैं, तब उससे उसी तरहका विरोधी बल भी गतिमान हो जाता है। इससे और अधिक बल इस्तेमाल करनेकी जरूरत पैदा हो जाती है और इस तरह बदले और बदलेका बदला लेनेका सिलसिला बढ़ता और मजबूत होता है। प्रारंभ कालके योद्धाओंकी गदासे मनुष्य तीर-कमान तक पहुंचा; तीर-कमानसे बन्दूक आई; बन्दूकसे तोपखाना निकला और तोपसे अणुबम और हाइड्रोजन बमका आविष्कार हुआ।

तो शान्तिकी प्यासी दुनियामें बढ़ते हुए तनावोंका यह कारण है। जब दोनों पक्ष एक ही या एकसे ही साधनोंका आश्रय लेते हैं, तब अनिवार्य रूपमें एकको दूसरे जैसा बनना पड़ता है। शायद यूनानके एक प्राचीन ग्रंथमें यह कथा आती है कि एक योद्धा और एक राक्षसमें द्वंद्वयुद्ध होता है। दोनों एक-दूसरे पर भयंकर आक्रमण करते हैं, न तो दया मांगते हैं और न देते हैं, कोई एक तिलभर

[illegible] भी नहीं छोड़ता। उनमें एक अजीब ढंग होता है। कोई भी पक्ष दूसरे पर विजय तो प्राप्त नहीं करता, लेकिन वे एक-दूसरेका स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं! अपने ही समयमें क्या हमने नहीं देखा कि जर्मन तानाशाहीके बेरहम तरीकोंको मित्रराष्ट्रोंकी मशहूर लोकशाहीने मात कर दिया और इन सब बातोंका अन्तिम परिणाम हुआ हिरोशिमा और नागासाकीमें दोषी और निर्दोष दोनोंकी सामूहिक हत्या? कोरियामें दोनों पक्ष उन्हीं साधनोंका उपयोग कर रहे हैं। नतीजा यह है कि 'मुक्तियुद्ध' 'विनाश-युद्ध' में बदल रहा है और उन्हीं लोगोंका सफाया हुआ जा रहा है जिनका उद्धार करना युद्धका ध्येय है। दोनों पक्षोंकी विचारधाराएं एक-दूसरेके विरुद्ध हो सकती हैं, मगर चूंकि साधन दोनों एक ही तरहके काममें ले रहे हैं, इसलिए अन्तमें दोनोंके बीचमें चुनाव करनेकी कोई बात नहीं रह जाती है।

साधनसे साध्य कैसे निश्चित होता है, इसकी कोई और मिसाल जरूरी हो तो वह साम्यवादी प्रयोगसे मिल जाती है। उसका घोषित लक्ष्य तो यह है कि नितान्त समानताके आधार पर राज्यहीन, वर्ग-रहित, स्वतंत्र समाजकी, यानी ऐसे समाजकी रचना की जाय, जिसमें हिंसाका नाम-निशान भी न रहे। लेकिन यह ध्येय पूरा करनेकी कोशिश की जा रही है हिंसक उपायों द्वारा। परिणाम यह है कि असैनिक दबाव और असैनिक हिंसाका प्रयोग भयंकर पैमाने पर हो रहा है और राज्यके मिटनेके तो कोई आसार नजर नहीं आते, उलटे वह इतना निरंकुश, इतना सत्ता-सम्पन्न और इतना सर्वव्यापी बन गया है जितना पहले कोई राज्य नहीं बना। लक्ष्यकी पूर्तिके लिए प्रयुक्त साधनोंमें निहित बलात्कारका तत्त्व उन साधनोंका उपयोग करनेवालेके इरादे पर हावी हो जाता है और उन्हें ऐसी दिशामें बढ़नेके लिए बाध्य कर देता है जिसे उन्होंने सोचा ही नहीं था।

इस कुचक्रको तोड़नेका कोई उपाय है? तनावको मिटानेके पशुबलसे भिन्न और अधिक अनुकूल कोई शक्ति है? गांधीजीने ... बत बता दी है। उन्होंने उसे सत्याग्रहका नाम दिया। वे

इसे आत्मबल भी कहते थे, क्योंकि इसमें विरोधीके भौतिक बलके सामने आत्माकी शक्ति लगाई जाती है। इस शक्तिके क्रियात्मक रूपका सबसे सरल उदाहरण यह है कि जब माता क्रोधमें आकर बच्चेको पीट देती है तो बच्चा रक्षाके लिए उसीसे चिपट जाता है और इस प्रकार उसके गुस्सेको शान्त ही नहीं कर देता, बल्कि उसे छलकते हुए प्रेममें बदल देता है।

२

इस शक्तिका स्वरूप क्या है? वह किन नियमोंके अनुसार काम करती है? उसे संगठित करके कर्मका अस्त्र कैसे बनाया जा सकता है? और अन्तमें विभिन्न परिस्थितियोंमें उसके उपयोगकी पद्धतियां क्या हैं?

प्रथम तो सत्याग्रह अथवा आत्मबल एक शक्ति है, जो उतनी ही प्रत्यक्ष है और समाजमें उतने ही ठोस परिणाम पैदा कर सकती है जितने भाप या बिजली कर सकती है। बल्कि वह इनसे कहीं अधिक सूक्ष्म, कहीं अधिक सबल और सर्वव्यापक है। वह पशुबलसे उलटी है। उसमें अहिंसाकी शक्ति है, जिसका विधायक पहलू प्रेम है।

दूसरे, उसके प्रसारके लिए किसी भौतिक माध्यमकी जरूरत नहीं होती; वह अपना प्रसार आप करती है।

तीसरे, वह जिन नियमोंसे संचालित होती है वे उतने ही निश्चित, यथार्थ और प्रत्यक्ष हैं जितने भौतिक नियम होते हैं। उसका अपना एक शास्त्र — निश्चित शास्त्र है; और उसमें खोज, प्रयोग और प्रत्यक्ष प्रमाणकी गुंजाइश है। परन्तु अभी वह बहुत अपूर्ण शास्त्र है। उसके प्रणेता अपनी मृत्युके समय भी उसके प्रयोग कर रहे थे।

परन्तु सत्याग्रहके नियमोंमें और भौतिक विज्ञानके नियमोंमें एक महत्त्वपूर्ण भेद है। भौतिक विज्ञानके नियम जड नियम हैं; जब कि सत्याग्रहके नियम सजीव नियम हैं और विकास, वृद्धि, अनुकूलन और परिवर्तनके सिद्धान्तके अधीन हैं। उदाहरणार्थ, एक वैज्ञानिक जो साधन काममें लेता है वे जड़ पदार्थके बने होते हैं। सत्याग्रहके साधन

सजीव प्राणी होते हैं और जिनके खिलाफ ये साधन आजमाये जाते हैं वे भी प्राणवान होते हैं। इसलिए सत्याग्रहके शास्त्रमें यह गुंजाइश नहीं कि उसका वर्णन कठोर और जड़ सूत्रों या निश्चित सिद्धान्तोंके रूपमें किया जा सके; उसके नियम और सिद्धान्त मानो प्रवहमान अवस्थामें हैं। इसलिए सत्याग्रहमें आचरणके एक निश्चित नमूनेकी यांत्रिक पुनरावृत्तिकी गुंजाइश नहीं होती, सत्याग्रहीको अकसर अपने सामनेके अगले कदमसे आगे देखनेकी मनाही होती है। वह पहलेसे अपनी आगेकी कार्रवाईकी योजना नहीं बनाता। वह सत्य और अहिंसाकी दृष्टिसे कठोर आत्म-संयम, आत्म-निरीक्षण और सतत सदाचारके द्वारा सत्याग्रहके नियमोंके अनुकूल बनकर उसके लिए अपनेको तैयार करता है।

३

गांधीजीने अपना सत्याग्रहका सिद्धान्त अपनी सत्य-सम्बन्धी धारणासे निकाला। अल्पज्ञ मनुष्य संपूर्ण सत्यको नहीं जान सकता — पूरी तरह तो सापेक्ष सत्यका ज्ञान भी उसे नहीं हो सकता। इसलिए एक व्यक्तिको जो सत्य प्रतीत हो वह दूसरेको गलत मालूम हो सकता है। फिर भी अपनी-अपनी दृष्टिसे दोनों सही हो सकते हैं। इस प्रकार गांधीजी शुरूमें ही इस नतीजे पर पहुंच गये थे कि सत्य-पालनमें विरोधीके प्रति हिंसाके लिए स्थान नहीं होता। इसलिए जिस सत्यके सिद्धान्तका वर्णन गांधीजीने सत्याग्रह शब्दसे किया उसका अर्थ यह है कि हम खुद कष्ट सहकर, या दूसरे शब्दोंमें प्रेमकी साधनाके द्वारा, उसके पक्षमें अपनी गवाही दें और इस तरह उसकी विजयकी स्थापना करें। इस प्रकार अहिंसा और सत्य एक ही सिक्केके उलटे और सीधे पहलू हैं — एक साधन है, दूसरा साध्य है।

गांधीजीका सत्याग्रह कोरा दर्शन नहीं, परन्तु आचरणमें उतारा जानेवाला तत्त्वज्ञान है। उनके अनुसार सत्यका मतलब कही हुई बात या घोषित विश्वास नहीं, बल्कि आचरण करनेकी वस्तु है। अगर कहें कुछ और करें कुछ, एक चीजका दावा करें और अमल

न करें, तो हमारा जीवन असत्यमय होगा। विचार और वाणीमें, वाणी और आचरणमें यह खाई मनुष्यके उत्साहको मार देती है और प्राणीमात्रमें जो आत्मबल सोया रहता है उसकी क्रियाका गला घोट देती है। गांधीजीकी सत्यकी साधना यह थी कि जिन आदर्शोंका वे दावा करते थे उनके सारे फलितार्थ अपने जीवनमें पूरी तरह उतारते थे। उनके लिए इस साधनाने सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्यके पंच महाव्रतोंके पूर्ण पालनका रूप लिया। अंतिम चार व्रत पहले व्रतके स्वाभाविक परिणाम हैं और उसीसे निकले हैं। मैं यहां इनकी व्याख्या करनेकी कोशिश नहीं करूंगा। इतना कहना काफी है कि जहां अपनी बुद्धिके अनुसार सत्याचरणका सिद्धान्त सत्याग्रह-बलके विकासके लिए आधारभूत है, वहां उसके फलितार्थ और इसलिए अनुशासनके रूप विभिन्न समाज-व्यवस्थाओंके प्रचलित नियमोंके अनुसार बदलते रहेंगे। न बदलनेवाली एकमात्र बात यही है कि हमारा आचरण हमारे विश्वासोंके अनुसार होना चाहिये। मन, वचन और कर्ममें पूरा मेल होना चाहिये। इस आधार पर तर्क करते हुए गांधीजी यहां तक कहते थे कि किसी सत्याग्रह आन्दोलनकी सफलताके लिए, जहां तक साधारण सैनिकोंका सम्बन्ध है, उनका अहिंसाके सिद्धान्तमें पूरा या अधूरा विश्वास होना जरूरी नहीं। उनके लिए इतना काफी है कि वे सच्चे अनुशासन और सैनिककी भावनासे अहिंसक कार्रवाईके नियमोंका पालन करें। अवश्य ही सत्याग्रहके नेतृत्वके लिए इससे ज्यादा ऊंचे दर्जेके अनुशासन और प्रशिक्षणकी जरूरत है।

तो होता क्या है? सत्याग्रह काम कैसे करता है? इसे आधुनिक मनोविज्ञानकी दृष्टिसे समझानेकी कोशिश की गई है। साहसपूर्ण, निर्दोष कष्ट-सहन विरोधीके हृदयसे क्रोध, डर और अहंकारके भावोंको मिटाकर उसमें नये रवैये और नये मूल्य ग्रहण करनेकी वृत्ति पैदा करता है। उधर प्रेमपूर्ण कष्ट-सहनसे सत्याग्रहीकी जो आत्मशुद्धि होती है, उसके कारण उसमें विरोधीके दृष्टिकोणको अधिक समझने और सहानुभूतिपूर्वक उसकी कद्र करनेकी शक्ति आती है; उसकी दुर्बलताएं और उसके

४

यहां निष्क्रिय प्रतिरोध और सत्याग्रहका अन्तर समझ लेना जरूरी है। निष्क्रिय प्रतिरोध हमारे क्रोधकी अभिव्यक्ति हो सकता है; सत्याग्रहमें विशुद्ध अहिंसा या प्रेम प्रगट होता है। उसमें द्वेष, क्रोध, छल और असत्यके लिए स्थान नहीं होता; वह दबावसे उलटी वस्तु है। सत्याग्रही विरोधीको नुकसान पहुंचाने या उसका नाश करनेके बजाय उसका हृदय-परिवर्तन करके उसे अपना मित्र बना लेना चाहता है। और निष्क्रिय प्रतिरोध तो कमजोरोंका हथियार है। गांधीजी इसे 'कायरोंका उपाय' कहते थे। निष्क्रिय प्रतिरोध करनेवालेका बस चले तो वह बलका प्रयोग भी कर लेगा। सत्याग्रही अहिंसाके हथियारको पसन्द करके अपनाता है, क्योंकि वह समझता है कि इसमें और किसी ज्ञात अस्त्रसे अधिक शक्ति छिपी हुई है। यह बहादुरोंका हथियार है। इसमें ऊंचेसे ऊंचे दरजेका साहस चाहिये। "सत्याग्रही व्यक्तिगत अन्यायको क्षमा करनेके लिए सदा तैयार रहता है। लेकिन चूंकि न मारना क्षमा तभी कहा जायगा जब हममें दण्ड देनेकी शक्ति हो, इसलिए जब अहिंसाका अवलम्बन लाचारीके कारण किया जाता है तब वह अर्थहीन हो जाती है।" गांधीजीने सत्याग्रहके सिद्धान्तका सार एक समीकरणके रूपमें बताया है: अहिंसाकी शक्ति उतनी ही होगी जितनी अहिंसक व्यक्तिमें आघात पहुंचानेकी शक्ति होगी — न कि इच्छा।

५

अहिंसाका सिद्धान्त प्राचीन कालसे चला आ रहा है; लेकिन जहां पहले अहिंसाको ऐसी निष्क्रिय वृत्ति समझा जाता रहा जो केवल आध्यात्मिक आनन्दकी प्राप्ति चाहनेवाले व्यक्तियोंके लिए अच्छी है, वहां गांधीजीने यह दिखा दिया कि उसे प्राणवान कैसे बनाया जा सकता है और अन्यायको मिटाने तथा सामाजिक न्यायको स्थापित करनेके लिए उसका कारगर उपयोग किस तरह किया जा सकता है। गांधीजीकी दलील यह थी कि उत्पीड़न और शोषण तभी संभव होते हैं जब

गुण दावोंको पर अधिक समझने लगता है। इन सब बातोंमें जिसे 'समन्वय' (Integration) कहा जाता है उसके लिए रास्ता तैयार होता है। इस समन्वयकी प्रक्रिया यह है कि पहले तो विरोधोंको प्रगट इनका विश्लेषण करके उनके मूल उपादान और अधिक बुनियादी अर्थ निकाले जायं और एक नियामक नया हल खोजा जाय, जिससे दोनों पक्षोंकी सभी या अधिकांश बुनियादी जरूरतें पूरी हो जायं, ताकि उनमें किसी भी पक्षमें निराशाकी भावना बाकी न रहे। जिन्हें दिलचस्पी हो वे अधिक अध्ययनके लिए श्री रिचर्ड ग्रेगके इस विषयके उत्तम ग्रंथ 'दि पावर ऑफ नॉन-व्हायोलेन्स' (अहिंसाकी शक्ति) को पढ़ें। उन्होंने दो अत्यंत आकर्षक उदाहरण दिये हैं: (१) "एक कमरेमें किसी खास स्थान पर मेज रखनेके आग्रहका असली अर्थ यह हो सकता है कि वह व्यक्ति मेज पर काम करते समय लिखनेकी अपनी पुस्तक पर रोशनी चाहता है और उसकी समझमें यह नहीं आता कि उसका यह उद्देश्य किसी दूसरी तरहसे कैसे पूरा हो सकता है। (२) किसी खास प्रदेश पर राजनीतिक नियंत्रण रखनेके आग्रहका अर्थ यह हो सकता है कि खुराककी और उद्योगके लिए कच्चे मालकी जरूरत है और अहंकारकी तुष्टिकी इच्छा है, और आग्रह रखनेवालेकी समझमें यह नहीं आता कि और किसी ढंगसे इन आवश्यकताओंकी पूर्ति सुनिश्चित कैसे बनायी जा सकती है।" दोनों सूरतोंमें ये जरूरतें पूरी करनेके एकसे अधिक उपाय ढूंढ़ निकालनेमें बहुत कठिनाई नहीं होगी, यदि एक बार इस आग्रहका भीतरी अर्थ समझ लिया जाय।

परन्तु यह स्पष्टीकरण पूरा नहीं माना जा सकता। अन्तिम विश्लेषण तो यही है कि सत्य और न्यायके लिए सहर्ष कष्ट भोगकर और विरोधीको दुःख न पहुंचा कर सत्याग्रही अपने विरोधीके साथ आध्यात्मिक एकता स्थापित करता है और उसके भीतर यह भावना जाग्रत करता है कि वह अपने ही व्यक्तित्वको हानि पहुंचाये बिना सत्याग्रहीकी हानि नहीं कर सकता।

४

यहां निष्क्रिय प्रतिरोध और सत्याग्रहका अन्तर समझ लेना जरूरी है। निष्क्रिय प्रतिरोध हमारे क्रोधकी अभिव्यक्ति हो सकता है; सत्याग्रहमें विशुद्ध अहिंसा या प्रेम प्रगट होता है। उसमें द्वेष, क्रोध, छल और असत्यके लिए स्थान नहीं होता; वह दबावसे उलटी वस्तु है। सत्याग्रही विरोधीको नुकसान पहुंचाने या उसका नाश करनेके बजाय उसका हृदय-परिवर्तन करके उसे अपना मित्र बना लेना चाहता है। और निष्क्रिय प्रतिरोध तो कमजोरोंका हथियार है। गांधीजी इसे 'कायरोंका उपाय' कहते थे। निष्क्रिय प्रतिरोध करनेवालेका बस चले तो वह बलका प्रयोग भी कर लेगा। सत्याग्रही अहिंसाके हथियारको पसन्द करके अपनाता है, क्योंकि वह समझता है कि इसमें और किसी ज्ञात अस्त्रसे अधिक शक्ति छिपी हुई है। यह बहादुरोंका हथियार है। इसमें ऊंचेसे ऊंचे दरजेका साहस चाहिये। "सत्याग्रही व्यक्तिगत अन्यायको क्षमा करनेके लिए सदा तैयार रहता है। लेकिन चूंकि न मारना क्षमा तभी कहा जायगा जब हममें दण्ड देनेकी शक्ति हो, इसलिए जब अहिंसाका अवलम्बन लाचारीके कारण किया जाता है तब वह अर्थहीन हो जाती है।" गांधीजीने सत्याग्रहके सिद्धान्तका सार एक समीकरणके रूपमें बताया है: अहिंसाकी शक्ति उतनी ही होगी जितनी अहिंसक व्यक्तिमें आघात पहुंचानेकी शक्ति होगी — न कि इच्छा।

५

अहिंसाका सिद्धान्त प्राचीन कालसे चला आ रहा है; लेकिन जहां पहले अहिंसाको ऐसी निष्क्रिय वृत्ति समझा जाता रहा जो केवल आध्यात्मिक आनन्दकी प्राप्ति चाहनेवाले व्यक्तियोंके लिए अच्छी है, वहां गांधीजीने यह दिखा दिया कि उसे प्राणवान कैसे बनाया जा सकता है और अन्यायको मिटाने तथा सामाजिक न्यायको स्थापित करनेके लिए उसका कारगर उपयोग किस तरह किया जा सकता है। गांधीजीकी दलील यह थी कि उत्पीड़न और शोषण तभी संभव होते हैं जब

गुण दोनोंको वह अधिक समझ
'समन्वय' (Integration)
होता है। इस समन्वयकी प्रक्रि
इच्छाका विश्लेषण करके उसके
अर्थ निकाले जायं और एक
दोनों पक्षोंकी सभी या अधिक
ताकि अन्तमें किसी भी पक्षमें
जिन्हें दिलचस्पी हो वे अधिक
विषयके उत्तम ग्रंथ 'दि
शक्ति) को पढ़ें। उन्होंने दो
"एक कमरेमें किसी खास स्थ
अर्थ यह हो सकता है कि
लिखनेकी अपनी पुस्तक पर
यह नहीं आता कि उसका
हो सकता है। (२) किसी
रखनेके आग्रहका अर्थ यह हो
लिए कच्चे मालकी जरूरत है
आग्रह रखनेवालेकी समझमें
आवश्यकताओंकी पूर्ति सुनि
सूरतोंमें ये जरूरतें पूरी
बहुत कठिनाई नहीं होगी,
समझ लिया जाय।

परन्तु यह स्पष्टीकरण
विश्लेषण सत्य
और

लेती है और फिर भी उससे प्रेम करना और उसकी सेवा करना बन्द नहीं करती, वह इस हथियारका अत्यंत शुद्ध रूपमें उपयोग करती है और अन्तमें अपने पतिसे मदिरा-पान छुड़वा देती है। इसी तरह एक भला नागरिक सरकारको अन्याय करनेसे बचानेकी दृष्टि रख कर उसे सहयोग देनेसे इनकार कर देगा। अवश्य ही इस असहयोगमें उसका हेतु सत्य और न्याय पर दृढ़ रह कर सरकारसे सहयोग करना ही होगा। इसलिए सरकारके जिन कर्मचारियोंके साथ वह असहयोग कर रहा है, उनके प्रति उसके मनमें कोई द्वेष या दुर्भाव नहीं होगा। "उसका असहयोग सम्मानपूर्ण सहयोगकी पूर्वभूमिका ही है।"

असहयोगको अगर सफल होना है तो उसका अर्थ यह होना चाहिये कि समाजके सभी वर्गोंमें सहयोग हो। इसके लिए गरीब-अमीरके, ऊंच-नीचके बीच खाई पैदा करनेवाली प्रत्यक्ष आर्थिक असमानताएं और सामाजिक अन्याय मिटानेकी जरूरत होगी; अपने धर्मके अलावा दूसरे धर्मोके लिए समान आदरकी और समाजके दूसरे लोगोंकी मान्यताओं और रीति-नीतियोंके प्रति व्यापक सहिष्णुताकी आवश्यकता होगी। लाखों मनुष्योंको बंधुत्वकी श्रृंखलामें जोड़ने और उनके जीवनमें अहिंसक आचरणको गूंथ देनेके लिए गांधीजीने अपना अठारह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया था और उसे कार्यान्वित करनेके लिए रचनात्मक कार्यकी कई संस्थाएं स्थापित की थीं। इसे वे रचनात्मक अहिंसा कहते थे।

अहिंसक अनुशासन सिखानेके लिए पाश्चात्य परिस्थितिके अनुसार इसी तरहके काम रिचर्ड ग्रेगने अपनी पुस्तक 'ए डिसिप्लिन फॉर नॉन-व्हायोलेन्स' (अहिंसाकी तालीम) में उदाहरण दे देकर बताये हैं। जिन्हें दिलचस्पी हो वे उस पुस्तकको पढ़ लें। एक अहिंसक सेनाके लिए रचनात्मक कार्य वैसा ही है जैसा खूनी लड़ाईके लिए रखी गई फौजके लिए कवायद और परेड। गांधीजीने देखा कि ऐसी तैयारी छोटे पैमाने पर व्यक्तियों द्वारा कार्यान्वित की जानेवाली अहिंसक प्रतिरोधकी या सविनय अवज्ञाकी योजनाके लिए लाजिमी नहीं है, विशेष या स्थानीय शिकायतें दूर करानेके लिए भी लाजिमी नहीं है;

लोभ, अज्ञान या भयसे पीड़ित लोग स्वयं इच्छापूर्वक या अनिच्छा-पूर्वक अपने शोषण या उत्पीड़नमें सहयोग देते हैं। यदि तमाम भले लोग किसी अन्यायी अथवा अत्याचारी व्यवस्थासे सहयोग करना सर्वथा बन्द कर दें, तो वह व्यवस्था अपने ही अन्यायके भारसे दबकर टूट जायगी। इस प्रकार बुराईके साथ असहयोगका रूप सत्याग्रहीके लिए आत्मशुद्धिका और जिस संस्थामें वह बुराई मूर्तिमन्त होती है उससे अपना सहयोग हटा लेनेका होता है। यदि असहयोग सम्पूर्ण, अहिंसक और सार्वत्रिक हो, तो उसके सामने अत्यंत बलशाली सत्ताको भी घुटने टेकने पड़ेंगे। जब दलील, वार्ता, प्रार्थना आदिसे किसी बुरी व्यवस्थाके संरक्षकको प्रभावित न किया जा सके, तब जो अन्यायके सामने झुकना या उसमें शरीक होना न चाहे उसके लिए एकमात्र उपाय यह रह जाता है कि वह उस अन्यायके साथ सहयोग करनेसे इनकार कर दे और इसके परिणामको अहिंसक ढंगसे सहन कर ले। उदाहरणके लिए, ऐसी सरकारके द्वारा प्रसारित अन्यायपूर्ण कानूनोंको या ऐसे कानूनोंको भी जो खुद तो बुरे नहीं हैं, परन्तु एक बुरी व्यवस्थाको सहारा देनेमें इस्तेमाल किये जाते हैं, अहिंसक ढंगसे तोड़ा जा सकता है। उस हालतमें सत्याग्रह सविनय अवज्ञा या सविनय प्रतिरोधके रूपमें प्रगट होता है। यह सविनय इस अर्थमें होता है कि उसका उद्देश्य गुनाह करना नहीं है।

सविनय अवज्ञा कई तरहकी होती है — रक्षात्मक, आक्रामक, व्यक्तिगत और सामूहिक। इनमें से हर प्रकारकी अवज्ञाकी अपनी विशेषताएं, नियम और तरीके होते हैं। किसी खास स्थिति या परि-स्थितिमें किस प्रकारकी सविनय अवज्ञाका प्रयोग किया जाय, यह निश्चय करनेके लिए सत्याग्रहके नेतामें काफी अनुभव, प्रशिक्षण और समझका होना जरूरी है। मोटे तौर पर नियम यह है कि जब "हिंसाबलका बोलबाला हो" तब संख्याकी अपेक्षा गुण पर ज्यादा जोर दिया जाय।

असहयोग कारगर तभी होगा जब वह हमारे क्रोधके बजाय हमारी पीड़ाका प्रतीक बन कर प्रकट हो। जो स्त्री अपने शराबी पतिको अपना जेवर देनेसे इनकार करती है, उसकी मारपीट बरदाश्त कर

लेती है और फिर भी उससे प्रेम करना और उसकी सेवा करना बन्द नहीं करती, वह इस हथियारका अत्यंत शुद्ध रूपमें उपयोग करती है और अन्तमें अपने पतिसे मदिरा-पान छुड़वा देती है। इसी तरह एक भला नागरिक सरकारको अन्याय करनेसे बचानेकी दृष्टि रख कर उसे सहयोग देनेसे इनकार कर देगा। अवश्य ही इस असहयोगमें उसका हेतु सत्य और न्याय पर दृढ़ रह कर सरकारसे सहयोग करना ही होगा। इसलिए सरकारके जिन कर्मचारियोंके साथ वह असहयोग कर रहा है, उनके प्रति उसके मनमें कोई द्वेष या दुर्भाव नहीं होगा। "उसका असहयोग सम्मानपूर्ण सहयोगकी पूर्वभूमिका ही है।"

असहयोगको अगर सफल होना है तो उसका अर्थ यह होना चाहिये कि समाजके सभी वर्गोंमें सहयोग हो। इसके लिए गरीब-अमीरके, ऊंच-नीचके बीच खाई पैदा करनेवाली प्रत्यक्ष आर्थिक असमानताएं और सामाजिक अन्याय मिटानेकी जरूरत होगी; अपने धर्मके अलावा दूसरे धर्मोंके लिए समान आदरकी और समाजके दूसरे लोगोंकी मान्यताओं और रीति-नीतियोंके प्रति व्यापक सहिष्णुताकी आवश्यकता होगी। लाखों मनुष्योंको बंधुत्वकी शृंखलामें जोड़ने और उनके जीवनमें अहिंसक आचरणको गूंथ देनेके लिए गांधीजीने अपना अठारह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया था और उसे कार्यान्वित करनेके लिए रचनात्मक कार्यकी कई संस्थाएं स्थापित की थीं। इसे वे रचनात्मक अहिंसा कहते थे।

अहिंसक अनुशासन सिखानेके लिए पाश्चात्य परिस्थितिके अनुसार इसी तरहके काम रिचर्ड ग्रेगने अपनी पुस्तक 'ए डिसिप्लिन फॉर नॉन-व्हायोलेन्स' (अहिंसाकी तालीम)में उदाहरण दे देकर बताये हैं। जिन्हें दिलचस्पी हो वे उस पुस्तकको पढ़ लें। एक अहिंसक सेनाके लिए रचनात्मक कार्य वैसा ही है जैसा खूनी लड़ाईके लिए रखी गई फौजके लिए कवायद और परेड। गांधीजीने देखा कि ऐसी तैयारी छोटे पैमाने पर व्यक्तियों द्वारा कार्यान्वित की जानेवाली अहिंसक प्रतिरोधकी या सविनय अवज्ञाकी योजनाके लिए लाजिमी नहीं है, विरोध या स्थानीय शिकायतें दूर करानेके लिए भी लाजिमी नहीं है;—

६

जातीय भेदभावको मिटानेके लिए सत्याग्रहके प्रयोगकी लगभग आदर्श मिसाल दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्रामकी कहानीसे मिलती है। दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंको शुरू शुरूमें यूरोपियन लोग ले गये थे, ताकि उन्हें सस्ते शर्तबन्द मजदूर मिल सकें। बादमें कुछ तो व्यापारमें स्पर्धाके डरसे लेकिन मुख्यतः जातीय द्वेषके कारण गोरे प्रवासियोंने भारतीय प्रवासियोंको भेदभावपूर्ण कानून पास करके मताधिकारसे वंचित करना चाहा। भारतीयोंको गैर-कानूनी उपायोंसे तंग किया गया, उनके साथ कठोर अपमानजनक बरताव किया गया और उनके साथ रेलों, मोटर-बसों, ट्राम गाड़ियों और होटलोंमें भेदभाव किया गया। जब प्रार्थनापत्र, शिष्ट-मंडल और पुराने ढंगका लोक-आन्दोलन बेकार हो गये, तब सविनय अवज्ञाका आश्रय लिया गया। भारतीयोंने नाम दर्ज करानेके प्रमाणपत्र लेनेसे इनकार कर दिया और जो पुराने परवाने उन्होंने लिये थे उनकी सार्वजनिक होलिया की गईं। उन्होंने जान-बूझकर संघके कानूनोंको तोड़कर कारावासका आवाहन किया। स्त्रियोंने खानों पर धरना देकर भारतीय मजदूरोंको बाहर निकल आनेके लिए प्रेरित किया। अन्तमें हजारों भारतीय पुरुष, स्त्रियां और (१६ वर्षसे ऊपरके) बच्चे व्यवस्थाबद्ध रीतिसे ट्रान्सवालमें घुस गये और इस प्रकार संघके प्रवेश-निषेध करनेवाले कानूनका उन्होंने भंग कर दिया। जब नेताओंका एक दल गिरफ्तार कर लिया जाता तो दूसरे उनका स्थान ले लेते, परन्तु कूच तब तक जारी रही जब तक सबको पकड़कर जेलमें बन्द नहीं कर दिया गया। यह संग्राम लगभग २० वर्ष तक चलता रहा, परन्तु वह भारतीयोंकी तरफसे द्वेषरहित ढंग पर जारी रखा गया। जब संग्राम तेजी पर था तब दक्षिण अफ्रीकाके गोरे रेल-कर्मचारियोंने हड़ताल कर दी। ये लोग अहिंसाके व्रती नहीं थे। अधिकारियोंकी परेशानीको न बढ़ानेके लिए सत्याग्रहके नेताने रेलकी हड़तालके दौरानमें सत्याग्रह-संग्रामको स्थगित कर दिया। इसका फौरन असर हुआ। सेनापति स्मट्सको झुकना पड़ा। पच्चीस वर्ष बाद उन्होंने उस संग्रामका

अपना अनुभव इस प्रकार लेखबद्ध किया : "जिसे दक्षिण अफ्रीकामें भारतीय प्रश्न कहा जाता है वह हमारे घरका कलंक था। ... उनका (गांधीजीका) तरीका कानून-भंग था। ... गैर-कानूनी आचरणके लिए भारतीयोंको भारी संख्यामें कैद करना पड़ा था। ... उनके (गांधीजीके) लिए सब-कुछ योजनाके अनुसार हो रहा था। मेरे लिए कानून और व्यवस्थाके रक्षककी हैसियतसे हमेशाकी तरह यह एक कठिन स्थिति थी। मुझे ऐसे कानूनका पालन कराना था जिसे जनताका दृढ़ समर्थन प्राप्त नहीं था; और अन्तमें विफल होनेकी बदनामी मोल लेनी पड़ी, क्योंकि उस कानूनको रद्द करना पड़ा था।" १९३१ में और फिर १९४३ में जब गांधीजीको भारी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था और एक तरहसे वे जेलकी दीवारोंके पीछे जिन्दा गाड़ दिये गये थे, तब सेनापति स्मट्सने ही उनकी हिमायतमें खड़े होकर अंग्रेजोंके झूठे प्रचारसे उनकी रक्षा की थी।

७

आजकी दुनियामें तनावका एक बड़ा कारण श्रम और पूंजीके बीचकी कशमकश है। गांधीजी कहते थे कि पूंजीवादी शोषणके विरुद्ध लड़नेमें अकसर मजदूरोंको नाकामयाबी होती है, इसका कारण यह है कि पूंजी द्वारा अपने ही शोषणमें शरीक होनेसे इनकार करके पूंजीकी ताकतको बेकार कर देनेके बजाय मजदूर पूंजीको हथियाना चाहता है और स्वयं पूंजीपति बन जाना चाहता है। इससे उसकी स्थिति कठिन और कमजोर बन जाती है। इस कुश्तीके लिए पूंजीपति ज्यादा तैयार है — उनका संगठन बेहतर है और उनके पांव अपनी जगह पर ज्यादा मजबूतीसे जमे हुए हैं। उन्हें मजदूरोंमें ही पूंजीवादी बननेकी इच्छा रखनेवाले उम्मीदवार मिल जाते हैं। मजदूरोंको दबानेमें पूंजीपति इनका उपयोग करते हैं। जिस दिन मजदूर यह अनुभव कर लेंगे कि अन्तमें असली पूंजी कथित चांदी-सोनेके टुकड़े नहीं हैं, बल्कि उत्पादक और उपयोगी श्रम है और वे अहिंसक असहयोगका हथियार कारगर रूपमें चलाना सीख लेंगे,

उसी दिन शोषणका किला ढह जायगा। गांधीजीके विचारसे उद्योग तो श्रम और पूंजीका सम्मिलित साहस है। तदनुसार मजदूर-हड़तालोंके सचालनमें वे मजदूरोंको यह सिखाते थे कि उन्हें समूचे उद्योगके हितको अपना ही हित समझना चाहिये और अपने आक्रमणको मालिकोंके भ्रष्टाचार, अन्याय, अयोग्यता और अदूरदर्शी लोभ पर केन्द्रित करना चाहिये। यह सिखाकर वे उद्योगपतियोंकी विवेक-बुद्धिको जाग्रत कर सके थे और उसे अपने पक्षमें ला सके थे। अहिंसाका आग्रह रखकर वे उनका भय शान्त कर सके थे और यह बुनियादी शर्त रखकर कि हड़तालियोंकी मांगें स्पष्ट, व्यवहार्य और न्यायपूर्ण हों, वे जनताकी सहानुभूति भी मजदूरोंके लिए प्राप्त कर सके थे। साथ ही हड़तालियोंकी तरफसे अहिंसाकी सुनिश्चितताके लिए उन्होंने यह सिफारिश की कि हड़तालियोंको किसी दस्तकारीमें प्रवीणता प्राप्त कर लेनी चाहिये, ताकि लम्बी हड़तालके दौरानमें उनके और उनके परिवारोंके गुजारेके लिए उन्हें पूरी तरह हड़ताल-कोष पर ही निर्भर न रहना पड़े। इसके सिवा, समाजके लिए उपयोगी श्रम करनेकी हड़तालियोंकी तैयारी और क्षमतासे हड़तालियों और जनताके बीच एक शृंखला बनती थी और स्वयं हड़तालियोंमें सहयोगका माध्यम खड़ा हो जाता था। इससे उनका हौसला कायम रखनेमें जैसी कारगर मदद मिलती थी वैसी और किसी तरह संभव नहीं थी।

८

सत्याग्रहका सबसे प्रबल रूप उपवास है। यह सबसे खतरनाक भी है, क्योंकि इसका दुरुपयोग बहुत आसानीसे किया जा सकता है। उपवास प्रायश्चित्तके तौर पर या आत्मशुद्धिके लिए किया जा सकता है। उसका आश्रय अपने प्रियजनोंके अपराधोंके मार्जनके रूपमें उन्हें दण्ड देने और उनसे पश्चात्ताप करानेके लिए लिया जा सकता है। अथवा वह किसी प्रत्यक्ष अन्यायके विरोधमें या समाजके अन्तःकरणको उसके खिलाफ जाग्रत करनेके लिए भी किया जा सकता है। पहले कारणसे किये जानेवाले उपवासको छोड़कर उपवासकी

समाज छिन्न-भिन्न हो जायगा, जिसका तथाकथित 'दलितवर्ग' अविभाज्य अंग है। इससे न 'दलितवर्ग' का भला होगा, न हिन्दू समाजका और न भारतका, परन्तु इससे ब्रिटिश सरकारको फूट डाल-कर राज्य करनेकी राजनीतिक चालमें 'दलितवर्ग' को अपना हथियार बनानेका मौका मिल जायगा। चूंकि गांधीजी अस्पृश्यताको समूल नष्ट करनेके लिए वचनबद्ध थे, इसलिए उन्होंने परिषदमें घोषणा कर दी कि यदि इस योजना पर, जैसी कि अफवाह है, अमल किया गया तो मैं अपनी जानकी बाजी लगाकर उसका विरोध करूंगा, भले फिर मुझे अकेले ही ऐसा करना पड़े। भारतमें पहुंचनेके एक सप्ताहके भीतर ही उन्हें जेलमें बंद कर दिया गया। जब ब्रिटिश सरकारका निर्णय प्रकाशित हुआ तो उन्होंने जेलकी दीवारोंके भीतरसे घोषणा कर दी कि अगर 'दलितवर्ग' की चुनावकी व्यवस्थामें उचित संशोधन नहीं किया गया तो वे आमरण अनशन करेंगे। ब्रिटिश सरकारका जवाब यह था कि उसमें संशोधन खुद दलितवर्ग और सवर्ण हिन्दुओंके बीचके समझौतेके द्वारा ही किया जा सकता है।

उपवासकी खबरसे देशभरमें बिजली दौड़ गई। हिन्दू अन्तःकरण जाग उठा। हिन्दुओं और दलितवर्गके नेताओंका पूनामें सम्मेलन हुआ। सम्मेलनने जो हल निकाला वह 'समन्वय' की पद्धतिका नमूना था। ब्रिटिश सरकारकी योजनामें पृथक् निर्वाचन और सुरक्षित स्थानोंके आधार पर अनुसूचित जातियोंको ७१ स्थान दिये गये थे और यह अधिकार भी दिया गया था कि अनुसूचित जातियां बाकीकी साधारण हिन्दू बैठकोंमें चुनाव लड़ सकेंगी। नेताओंके सम्मेलनने (दलितवर्गके नेता) डॉ० आम्बेडकरको सुरक्षित स्थानों और सम्मिलित निर्वाचनके आधार पर १७१ बैठकें दीं, परन्तु इस शर्तके साथ कि अनुसूचित जातियोंके लिए सुरक्षित हर स्थानके लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी प्रणालीसे ४ उम्मीदवार चुने जायेंगे। इसके लिए अनुसूचित जातियोंके मतदाताओंका एक *निर्वाचन-मंडल* होगा। फिर ये चारों उम्मीदवार साधारण मतदाताओं द्वारा चुने जानेके लिए उम्मीदवार बनेंगे। डॉ० आम्बेडकरने खुद यह प्रस्ताव किया था कि अनुसूचित जातियोंके

हिस्सेके स्थानोंमें से ७६ के लिए दोहरे चुनावकी प्रणाली होनी चाहिये, हर स्थानके लिए अनुसूचित जातियोंके मतदाता दो उम्मीदवार चुनें और वे सम्मिलित निर्वाचन-क्षेत्रमें दलितवर्गकी तरफसे चुनाव लड़ें।

गांधीजीने पूछा: "यदि दोहरा चुनाव ७६ स्थानोंके बारेमें ठीक है, तो दलितवर्गके सभी स्थानोंके लिए क्यों नहीं? तो, डॉ० आम्बेडकर, आपको दलितवर्गके तमाम स्थानोंके लिए दोहरे चुनावकी पद्धति मिल जायगी, मगर आपको प्रारंभिक चुनावमें उम्मीदवारोंकी संख्या बढ़ाकर दोसे पांच करनी होगी।" अन्तमें डॉ० आम्बेडकरने ४ की संख्या स्वीकार की।

डॉ० आम्बेडकरने यह निर्णय करनेके लिए कि स्थान सुरक्षित रखनेका तरीका जारी रखा जाय या बन्द कर दिया जाय, पंद्रह वर्ष बाद जनमत-संग्रहकी मांग की (परन्तु वे १० वर्ष रखनेको तैयार थे)। उन्होंने समझाया कि "मैं हिन्दू समाजसे उसका वचन पालन करानेके लिए इसे एक चुनौतीके रूपमें—एक तरहकी खतरेकी तलवारके रूपमें उसके सामने रखना चाहता हूं।"

गांधीजी यह चुनौती और तलवार चाहते थे, परन्तु उन्होंने सचाई और तीव्र लगनके साथ पूछा: "यह चुनौती ५ वर्षके अन्तमें क्यों न आने दी जाय? अगर आप १० सालका आग्रह रखेंगे तो मुझे यह सन्देह होने लगेगा कि आप सवर्ण हिन्दुओंकी नेकनीयतीकी परीक्षा करना नहीं चाहते, परन्तु विपरीत जनमत-संग्रहको संगठित करनेके लिए समय चाहते हैं। तो फिर या तो ५ वर्ष या मेरे प्राण।"

अन्तमें हल निकाल लिया गया—जनमत-संग्रहका सारा सवाल मुलतवी रहे और भविष्यमें आपसी समझौतेसे निर्णय किया जाय। दक्षिण भारतके ब्राह्मण नेता श्री राजगोपालाचार्यने अपनी विशेष दक्षिण भारतीय सूक्ष्मतासे समझाया: "इसमें किसी चीजकी रोक तो है ही नहीं और यह भी संभव है कि किसी जनमत-संग्रहके बिना ही काम चल जाय।"

इस आधार पर यरवडा समझौता हुआ। डॉ० आम्बेडकरको सुरक्षित स्थान तो ब्रिटिश सरकार जितने देती थी उनसे ज्यादा मिल गये, मगर ऐसी शर्तोंके साथ मिले जिससे बादमें ब्रिटिश सरकार राजनीतिक सग्राममें दलितवर्गके प्रश्नका दुरुपयोग न कर सके। गांधीजीका उपवास जब शुरू हुआ तब डॉ० आम्बेडकरने उसे "राजनीतिक चाल" बताया था, परन्तु जब उपवास टूटा तो उन्होंने पूज्यभावसे गांधीजीके पैर छुए। बम्बईके नेता-सम्मेलनने जो प्रस्ताव पास किया उसमें यह घोषणा की गई कि "आगेसे कोई भी अपने जन्मके कारण अछूत नहीं माना जायगा" और "हिन्दू नेताओंका फर्ज होगा कि तथाकथित दलितवर्ग पर इस समय रिवाजसे जो सामाजिक प्रतिबन्ध लगे हुए हैं उन्हें वे हर उचित और शान्तिपूर्ण उपाय द्वारा जल्दी दूर करायें। इसमें मन्दिर-प्रवेश-सबधी बाधा भी शामिल होगी।" उसके बाद अस्पृश्यता कानूनन् मिटा दी गई है। सविधानके द्वारा जो कुछ हो सकता था वह सब कर दिया गया है, परन्तु हरिजनोंकी सामाजिक और आर्थिक स्थितिको उन्नत करनेके लिए सख्त और लगातार कोशिश करनेकी जरूरत है।

उस महान उपवास और उसमें निहित सत्याग्रह-कलाकी कहानी लेखकने अपनी पुस्तक 'दि एपिक फास्ट' (ऐतिहासिक उपवास) में कही है।

गांधीजीके अन्तिम दो उपवास साम्प्रदायिक पागलपनकी आगको बुझानेके लिए किये गये थे। पहला तो अगस्त १९४७ में कलकत्तेमें किया गया था, दूसरा जनवरी १९४८ में दिल्लीमें। इन उपवासोंकी चमत्कार-पूर्ण सफलताका रहस्य शायद यह था कि वे ऐसे समय किये गये जब गांधीजी चाहते तो राज्यकी सारी सशस्त्र शक्तिका उपयोग कर सकते थे, परन्तु उन्होंने कष्ट-सहनके हथियारका उपयोग करना ही बेहतर समझा। दूसरा कारण शायद यह था कि उन्होंने अपनेको पूरी तरह भगवानकी दया पर छोड़ दिया था, यहां तक कि उसकी कृपाके बिना उनकी जीनेकी इच्छा तक विलीन हो गई थी।

क्या अहिंसाको [illegible] किया जा सकता है कि उससे विदेशी सशस्त्र आक्रमणका [illegible] सामना किया जा सके? गांधीजीने इसके लिए एक योजना बनाई जरूर थी, यद्यपि उन्हें उसे आजमा देखनेका मौका नहीं दिया गया। उनकी कार्य-योजना तिहरी थी — आक्रमणसे पहले, आक्रमणके अवसरमें और आक्रमणके बादमें। आक्रमणसे पहलेकी स्थितिमें उस पद्धतिका रूप यह था कि आक्रमण-कारी राष्ट्र हमला करे उसके पहले ही उस पर सद्भाव, मित्रभाव, समझौतेकी वृत्ति और निःस्वार्थ सेवाके हथियारोंसे जवाबी 'हमला' कर दिया जाय। इस पद्धतिका प्रयोग वे इतिहासप्रसिद्ध खूंखार पठान योद्धाओंकी भूमि उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें सरहदी हमलोंको रोकनेके लिए जिस तरह करना चाहते थे उसका वर्णन लेखककी पुस्तक 'ए पिल्ग्रिमेज फॉर पीस' (शांतिकी यात्रा) में मिलेगा।

हमलेके दौरानमें कार्य-पद्धति यह होगी कि सारा देश आक्रमण-कारीका अहिंसक मुकाबिला करे और आखिरी दम तक तथा आखिरी आदमी तक करे और उसके साथ पूरा असहयोग किया जाय। लेकिन आक्रमणकारी सेनाके लोगोंकी जब भी वे विपत्तिमें हों व्यक्तिगत रूपमें दयापूर्ण सेवा करनेका कोई मौका हाथसे न जाने दिया जाय। जब भारत पर जापानी हमलेका खतरा था और ब्रिटिश सरकारने अपनी सेनायें बचावकी दूरस्थ पंक्ति तक हटा लेनेका निश्चय कर लिया था, उस समय गांधीजीने इस बारेमें कार्रवाईकी ब्यौरेवार योजना तैयार की थी (देखिये परिशिष्ट—क)। इसमें देशके बड़े बड़े भाग आक्रमण-कारीके लिए खुले छोड़ दिये जाते। यदि पहली दो स्थितियोंमें बताई गई कार्रवाई असफल रहती और आक्रमणकारी देश पर अधिकार कर लेता, तो मुकाबिलेका रूप अहिंसक असहयोगका हो जाता। उस स्थितिमें आक्रमणकारियोंका सामना उन सब प्रकारके सत्याग्रहोंसे किया जाता, जो ब्रिटिश सत्ताके विरुद्ध भारतके अहिंसक संग्रामके दिनोंमें काममें लिये गये थे।

शंकाशील लोग कहेंगे कि ये सब उपाय दमन और बलात्कारकी उस भयंकर ताकतके सामने, जो कि आजकलकी निरंकुश तानाशाहियोंको प्राप्त है, नहीं चल सकते। इन तानाशाहियोंने पशुताकी नीतिका तत्त्वज्ञान तैयार कर लिया है और इस तरह वे दया, प्रेम आदिकी मानवीय भावनाओंकी पहुंचके परे हो गयी हैं। लेकिन सच तो यह है कि इसी परिस्थितिने इन उपायोंका अपनाया जाना अनिवार्य कर दिया है। मानव-जातिको सर्वनाशसे बचानेका और कोई उपाय नहीं है। दूसरे विश्वयुद्धमें शस्त्रास्त्रोंकी भयंकर विनाश-शक्तिसे लोगोंको डरा-धमकाकर अपने वशमें लानेकी एक नयी कलाका जन्म हुआ। यदि तानाशाह अपनी संहारक शक्तिका असंदिग्ध रूपमें प्रत्यक्ष प्रमाण दे सके, तो उसे अपना उद्देश्य साधनेके लिए वास्तविक संहारकी जरूरत नहीं रहती थी। इस पद्धतिका उपयोग करके सर्वाधिकारी सत्ताओंके लिए लगभग एक भी गोली चलाये बिना संपूर्ण राष्ट्रोंको दबाकर गुलाम बनाना संभव हो गया। यह एक सूचक बात है कि यद्यपि प्रथम विश्वयुद्धकी अपेक्षा दूसरे विश्वयुद्धमें शस्त्रास्त्रोंकी संहारक-शक्ति और संख्या कहीं ज्यादा थी, तो भी हताहतोंकी संख्या दरअसल कम थी। इस तथ्यके आधार पर गांधीजी यह कहते थे कि जैसे जैसे सैनिकवादके फौलादी पंजेमें कराहनेवाले लोगोंकी संख्या बढ़ेगी, वैसे वैसे इस सत्यके आविष्कारकी भूमिका तैयार होती जायगी कि यदि पीड़ित जनता केवल मौतका डर छोड़ दे, तो उसे अपनी आजादी फिरसे प्राप्त करनेके लिए मरनेकी जरूरत नहीं होगी। विनाशके शस्त्र जितने अधिक घातक होंगे उतनी ही इस बातकी आवश्यकता और संभावना बढ़ेगी कि मानव-जाति उनका सामना एक ऐसी भिन्न प्रकारकी शक्ति द्वारा करे जिसके विरुद्ध वे जीत नहीं सकते। शस्त्रास्त्र तो सिर्फ विनाश ही कर सकते हैं। फिर भी अत्याचारीका उद्देश्य विरोधीका सर्वनाश उतना नहीं होता जितना स्वेच्छासे या बलात्कारसे उसका सहयोग प्राप्त करना। यह सहयोग उसे कोई शस्त्रास्त्रकी ताकत [illegible] दिला सकती, अगर लोगोंमें सचमुच इनकार कर देने[illegible] आ जाय। इसलिए, जिस

इस बातको स्वयंसिद्ध जैसी अचूक मानते थे कि शुद्ध कष्ट-सहन यदि अन्त तक खुशीसे किया जाय, तो उससे पत्थरका दिल भी जरूर पिघल जायगा। उनके जीवनके अंतिम दिन एक अमरीकी पत्रकारने उनसे पूछा था: "आप अणुबमका मुकाबिला अहिंसासे कैसे करेंगे?" उन्होंने जो उत्तर दिया वह यहां देने लायक है, खास तौर पर इसलिए कि उन्होंने ये शब्द अपने निधनसे कुछ ही घंटे पहले कहे थे: "मैं छिपूंगा नहीं। मैं ऐसे हवाई आक्रमणसे बचनेके लिए बनाये गये आश्रय-स्थानोंकी शरण नहीं लूंगा। मैं खुलेमें आ जाऊंगा और विमान-चालकको यह देखने दूंगा कि मेरे हृदयमें उसके प्रति जरा भी द्वेष नहीं है। मैं जानता हूं कि उतनी बड़ी ऊंचाईसे वह हमारे चेहरे नहीं देख सकेगा। परन्तु हमारे हृदयकी यह अभिलाषा — कि उसे आंच न आये — उस तक पहुंच जायेगी और उसकी आंखें खुल जायेंगी।" फिर यह अनुमान लगाकर कि प्रश्नकर्ताके मनमें क्या चल रहा है उन्होंने आगे कहा, "जिन हजारोंको हीरोशिमामें मौतके घाट उतारा गया था, वे ऐसे ही प्रार्थनापूर्ण हृदयोंके साथ खुलेमें मरते, तो लड़ाई इतने अपमानपूर्ण ढंगसे खतम न हुई होती।"

१०

गांधीजी यह नहीं मानते थे कि जब तक समाज अमीरों और लाखों भूखोंके बीच चौड़ी खाई रहने देता है तब तक शान्तिका लक्ष्य सिद्ध हो सकता है। किन्तु मुश्किल यह है कि अगर हम राज्य द्वारा जबरन् सम्पत्ति-हरण करके मनुष्योंको समान बनानेकी कोशिश करते हैं तो वे स्वतंत्र नहीं रह जाते। इसके विपरीत यदि वे स्वतंत्र छोड़ दिये जायं तो जिसे प्रो० हाल्डेन 'मनुष्यकी जन्मजात असमानता' कहते हैं उसके कारण वे असमान बन जाते हैं। प्रकृतिमें सब मनुष्य इस अर्थमें समान पैदा होते हैं कि उन्हें समान अवसरका नैतिक अधिकार है।' परन्तु सबकी योग्यता बराबर नहीं होती। इसलिए कुछ लोगोंमें औरोंसे ज्यादा कमानेकी योग्यता होगी। गांधीजी ज्यादा

बुद्धिमान लोगोंको ज्यादा कमानेसे रोककर न तो उनकी बुद्धिको कुण्ठित करना चाहते थे और न हिंसा द्वारा धनवानोंकी संपत्ति छीन लेना चाहते थे। इसके बजाय अमीरों और गरीबोंके बीचकी खाई पाटनेके लिए उन्होंने सुझाया कि धनवानोंको अपनी बुद्धि और अधिकतर कमाईका उपयोग अपने ही लिए न करके धरोहरके रूपमें समाजकी भलाईके लिए करना चाहिये। संरक्षकोंकी हैसियतसे उन्हें हक होगा कि समाजके प्रति अपनी सेवा या उपयोगिताके बदलेमें वे अपने लिए उचित कमीशन रख लें। परिवर्तन-कालमें अपने कमीशनका उचित प्रमाण समाजकी सलाहसे उन्हें खुद ही तय कर लेनेकी छूट रहेगी। निश्चित मर्यादाके भीतर कमीशनकी दरकी भी तब तक परवाह नहीं की जायगी जब तक वे धरोहरके आधारवाले अधिकारोंके बदलेमें पूरे स्वामित्वके आधारवाले अपने वर्तमान अधिकार छोड़ देनेको तैयार होंगे। समय पाकर जब जमीन काफी तैयार हो जायगी, तब संरक्षकता देशका कानून बन जायगी और उसका पालन, जिसमें सम्पत्तिका उत्तराधिकार शामिल होगा, राज्य करायेगा। उसमें कमसे कम बल-प्रयोग किया जायगा और संरक्षकताके सिद्धान्तका अनुसरण किया जायगा।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि जरूरी कानून बनने तक पूंजीपतियोंके संरक्षक बननेका काम पूंजीपतियोंकी मरजी पर ही छोड़ दिया जायगा। अगर उन्होंने स्वामित्वका नया आधार स्वेच्छासे स्वीकार नहीं किया या उन्होंने दलीलके सामने कान ही मूंद लिये, तो अहिंसक असहयोगका हथियार काममें लिया जायगा। उदाहरणार्थ, अगर कोई जमींदार संरक्षकताका सिद्धांत माननेसे इनकार कर दे, तो खेतीके मजदूर उसकी खेतीका बहिष्कार कर देंगे और अगर बहिष्कार करनेवालोंने जमींदारकी भूमि पर धरना लगा दिया हो तो लोकमत इस बातकी इजाजत नहीं देगा कि उन्हें बेदखल करनेके लिए गद्दार मजदूर लाये जायं या सरकारी पुलिस इस्तेमाल की जाय। गांधीजीने अपने संरक्षकताके विचारका सार इस तरह बताया था :

१. संरक्षकता वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्थाको समतावादी व्यवस्थामें बदल देनेका एक साधन मुहैया करती है; यह पूंजीवादको कोई आश्रय नहीं देती, परन्तु मौजूदा मालिक वर्गको अपना सुधार करनेका मौका देती है। उसका आधार यह श्रद्धा है कि मानव-स्वभाव कभी सुधारसे परे नहीं होता।

२. समाज स्वयं अपनी भलाईके लिए जितनी इजाजत दे उसके अलावा संरक्षकता संपत्तिके निजी स्वामित्वका कोई अधिकार स्वीकार नहीं करती।

३. वह सम्पत्तिके स्वामित्व और उपयोगका नियमन करनेके लिए कानून बनानेका निषेध नहीं करती।

४. इस प्रकार, राज्य द्वारा नियमित संरक्षकतामें कोई व्यक्ति अपने स्वार्थपूर्ण संतोषके लिए अथवा समाजके हितकी परवाह न करके अपनी सम्पत्ति रखने या काममें लेनेको स्वतंत्र नहीं होगा।

५. जैसे उचित अल्पतम जीवन-वेतन निश्चित करनेका प्रस्ताव है, वैसे ही समाजमें किसी मनुष्यको अधिकसे अधिक आय कितनी लेने दी जाय, इसकी मर्यादा भी तय कर देनी चाहिये। इस कमसे कम और ज्यादासे ज्यादा आमदनीके बीचका अन्तर उचित, न्यायसंगत और समय समय पर बदल सकनेवाला होना चाहिये और वह इस तरहसे कि प्रवृत्ति उस अन्तरको मिटानेकी रहे।

६. गांधीवादी अर्थ-व्यवस्थामें पैदावार किस किस्मकी हो, इसका निर्णय आवश्यकता करेगी, न कि व्यक्तियोंकी मरजी या उनका लालच।

"कानूनकी इस कल्पित संरक्षकता" का — जैसा कि एक शंकाशील आलोचकने उसका वर्णन किया है — क्या इतना ही उपयोग नहीं होगा कि निजी संपत्तिकी संस्थाको — जो कि शोषणका परिणाम है — नया जीवन प्राप्त हो जाय? संपत्तिमात्रको एक झपाटेमें ही राज्यकी सम्पत्ति क्यों न बना दिया जाय? गांधीजीका

जवाब यह था कि "मैं इस बातसे सहमत हूं कि मौजूदा व्यवस्थामें पूंजीका व्यक्तिके पास जमा होनेका कारण अधिकांशमें शोषण यानी हिंसा है, लेकिन मैं व्यक्तिकी हिंसाको दोनों बुराइयोंमें छोटी मानता हूं। यदि राज्य पूंजीवादको हिंसासे दबा देगा तो वह खुद हिंसाकी लपेटमें फंस जायगा . . . और फिर किसी भी समय अहिंसाका विकास नहीं कर सकेगा। राज्य केन्द्रित और संगठित हिंसाका ही प्रतीक है। व्यक्तिके आत्मा होती है, परन्तु राज्य निर्जीव यंत्र है। . . . इसलिए मैं संरक्षकताके सिद्धान्तको ज्यादा पसन्द करता हूं।"

और, राज्य क्रमशः अधिकाधिक बढ़नेवाले करके जरिये अतिरिक्त दौलतको तो बलपूर्वक अपने कब्जेमें ले सकता है, लेकिन विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गकी बुद्धि और सद्भावना पर वैसा नियंत्रण नहीं कर सकता। इसके विपरीत, संरक्षकता जहां पूंजीवादी व्यवस्थाका अन्त कर देती है, वहां पूंजीपतियोंको इतनी नैतिक स्वतंत्रता दे देती है, जिससे वे समाजकी सेवाके लिए अपनी बुद्धिका विकास और सदुपयोग कर सकें और आम जनताका कष्ट निवारण कर सकें। सचमुच ऐसी कोई भी अच्छी चीज, जो हिंसक क्रान्तिके द्वारा हो सकती है, उतनी ही या उससे भी बड़ी मात्रामें संरक्षकताके जरिये भी हो सकती है। फिर संरक्षकताकी विशेषता यह है कि संरक्षकता हिंसा, नागरिकोंके जीवनके व्यापक नियंत्रण और व्यक्तिगत स्वतंत्रताके दमनकी बुराइयां टालती है। अगर बड़े बड़े उद्योग-धंधोंका राष्ट्रीयकरण हो जाय और राज्यको उनका मालिक बना दिया जाय, तो भी यदि उनके साथ साथ संरक्षकताकी व्यवस्थाके अन्तर्गत निजी उद्योग भी चलें तो उससे उस आलस्य, अक्षमता, भ्रष्टाचार, गाफिलता और नौकरशाहीकी निरंकुशता पर अंकुश रहेगा, जो सरकारी स्वामित्ववाली लगभग सभी व्यवस्थाओंमें पाई जाती है। "मनुष्योंको आजाद कर दो तो वे असमान बन जायेंगे, और उन्हें समान बना दो तो वे आजाद नहीं रहेंगे," — इस पहेलीसे हम संरक्षकताकी व्यवस्थाके द्वारा ही बच सकते हैं।

क्या सरक्षकताके सिद्धान्तका एक राष्ट्रके दूसरे राष्ट्रका संरक्षक बन जानेको न्यायपूर्ण सिद्ध करनेके लिए उपयोग नहीं किया जा सकता? उत्तर यह है कि सरक्षकता प्रकृतिकी योजनामें बार-बार उत्पन्न होनेवाली अनिवार्य असमानताओंको दूर करनेका एक साधन है, न कि सरक्षकताकी आड़में कृत्रिम रूपसे असमानतायें पैदा करनेका बहाना। यह तो उसके असली अर्थ और हेतुका विपर्यास होगा।

११

एक और कारणसे भी गांधीजी समाजके नियमनमें सरकारी हस्तक्षेपके अवसर बढ़ानेके विरुद्ध थे। वे 'नैतिक स्वतंत्रता' को सबसे अधिक महत्त्व देते थे। वे चाहते थे कि सारा सुधार भीतरसे और नीचेसे हो। किसी बाहरी सत्ताके द्वारा प्रगति थोपी जाय इस पर उन्हें एतराज था। गांधीजीको राज्यकी प्रवृत्तियोंका विस्तार करनेमें खतरा नजर आता था। महान मानसशास्त्री जुग राज्यको एक झूठी कल्पना मानता है। वह कहता है कि लोगोंका ऐसा खयाल है कि "राज्य कोई लोकोत्तर व्यक्ति है, जिसके पास अपार शक्ति, साधन और सूझ-बूझ है और इनके द्वारा वह जो काम कर सकता है उसे करनेकी किसी व्यक्तिसे आशा नहीं रखी जा सकती।" लोगोंका यह खयाल गलत है। जुगने ठीक ही कहा है कि "समूह-मानस (Mass psychology) का निर्माण करनेवाली इस खतरनाक वृत्तिका आरंभ तब होता है, जब हम बड़ी संख्याओं और विशाल संघटनोंकी भाषामें सोचने लगते हैं। साधनोंके रूपमें जहां बड़ी संख्याओं और विशाल संघटनको मुख्यता मिलती है, वहां व्यक्ति बिलकुल महत्त्वहीन, नगण्य हो जाता है।" और फिर, "हर चीज जो एक निश्चित मानव आकारसे बढ़ जाती है, उससे मनुष्यके अज्ञात मानसमें उतनी ही अमानुषिक शक्तियां पैदा हो जाती हैं" और उसीसे 'सर्वाधिकारवादी राक्षस' प्रगट होते हैं। जुगने यह भी कहा है: "हमारे हथियारोंकी विनाशक शक्ति बढ़ते बढ़ते भीमकाय हो गई है और उसने सारे मानव-समाज पर इस मनोवैज्ञानिक

अपने मार्गदर्शक सिद्धान्त न मान लेंगे और जब तक वे राजनीतिक दलबन्दी और कूटनीतिके विचारों पर चलते रहेंगे, जैसा कि दुर्भाग्यसे आज हो रहा है।

और फिर, लड़ाइया युद्धके मोर्चों पर शुरू नहीं होती। और न यही होता है कि लड़ाईके सचमुच बन्द होते ही अपने-आप फिरसे शांति हो जाती है। आन्तरराष्ट्रीय तनाव अकसर राष्ट्रोंके भीतरी तनावोंका विस्तार होते हैं और लड़ाईकी जड़ समाजमें फैले हुए कारणोंमें होती है। इसी कारणसे युद्धके विषयमें युद्धका सैद्धान्तिक विरोध करनेवाले विरोधियोंका परम्परागत नकारात्मक रवैया अकेला अपर्याप्त सिद्ध हुआ है। इसलिए आन्तरराष्ट्रीय शान्तिकी समस्या सुलझानेके लिए यह जरूरी है कि समाजके भीतरी खिचाव और दबावके स्वरूप और कारणोंकी तथा उनको दूर करनेके उपायोंकी खोज की जाय।

आज तो हमारे सामने लोकतंत्र और विपुलताके, समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रताके तथा प्रगति और शान्तिके बीचका विरोध मिटानेकी समस्या है। तमाम तंत्रों और वादोंसे परे तो विशेषाधिकारकी समस्या है। वह अधिकार अनेक रूपोंमें प्रगट होता है। लोकतंत्रमें वह उत्पादन और वितरणके साधनोंके एकाधिकारके रूपमें सामने आता है, तानाशाहीमें वह राजनीतिक सत्ताके रूपमें सामने आता है और दोनोंमें ही बुद्धि, कला-कौशलके ज्ञान और विशेषज्ञोंके अनुभवके रूपमें सामने आता है।

अधिकाधिक भौतिक सामग्री प्राप्त करनेकी इच्छासे उत्पन्न सामूहिक उत्पादनकी प्रणालीने समाजकी सीमाओंको इतना पीछे धकेल दिया है और उसकी समस्याओंको इतना जटिल बना दिया है कि औसत व्यक्तिके पास — जिसे अपनी रोजीके लिए काम करना पड़ता है — इतना समय, इतनी शक्ति या अकसर इतनी बुद्धि भी नहीं होती, जिससे वह सामाजिक तंत्रकी कार्यप्रणालीको समझ सके। इसलिए सचमुच वह अपने आसपासकी परिस्थितियों पर बहुत ही थोड़ा असर डालता है। उसे अपने लिए विचार करनेका काम बहुत-कुछ राजनीतिज्ञों और विशेषज्ञों पर छोड़ देना पड़ता है।

घनिष्ठतासे जुड़ा हुआ सवाल लोगोंके मानसिक स्वास्थ्यका है। लड़ाईकी वृत्ति मानव-स्वभावमें जन्मजात है, इसे मिटाया नहीं जा सकता। परन्तु इसका रूपांतर किया जा सकता है। यदि उसे समाजके लिए उपयोगी, उत्पादक कार्यके रूपमें प्रगट होनेका मौका नहीं मिलता, तो वह विसकी विकृतिका रूप ले लेती है। आजकलके उत्पादनके तरीकोंने भी मजदूरोंको उत्पादक संतोषके अनुभवसे वंचित करके उनमें मानसिक विकृति पैदा कर दी है। "इसके विपरीत, धरतीमाताके साथ निकट संबंध होनेसे किसानमें सुरक्षाकी भावना और मानसिक संतुलन होता है। किसानको भी ऋतुओंकी उच्छृंखलताका सामना करना पड़ता है, परन्तु इन विपत्तियोंके कारण उसे प्रकृतिसे लड़नेकी नयी प्रेरणा मिलती है या वह दस्तकारियोंका आश्रय ले लेता है। इससे उसमें शान्तिकी चाह पैदा होती है।" * यही बात कारीगरों पर लागू होती है। "उनकी युद्धवृत्ति रचनात्मक कार्यके रूपमें व्यक्त होती है और इसलिए उनमें अपनी विनाशक वृत्तियां प्रगट करनेकी इच्छा नहीं रहती।" *

इसलिए गांधीजी ऐसे ग्रामीण समाजोंकी प्रणालीकी ओर लौट जानेका समर्थन करते थे, जिनमें से हरएक तमाम बुनियादी जरूरतोंके मामलेमें बहुत कुछ आत्म-निर्भर हो। ऐसी समाज-व्यवस्थामें खेती और उद्योग साथ साथ चलेंगे। मशीनें सर्वथा उठा नहीं दी जायगी। लोग उन्हें कहीं अधिक संख्यामें रखेंगे। लेकिन ये ऐसी सीधी-सादी होंगी, जिन्हें लोग खुद चला सकते हैं, खुद रख सकते हैं और नियंत्रित कर सकते हैं। इस सादी व्यवस्थामें समाज ऐसी छोटी छोटी इकाइयोंका बना होगा, जिनका प्रबंध आसानीसे किया जा सके और जो परस्पर सहयोगके बन्धनमें बंधी होंगी। लोग अपने आसपासकी हालतको समझ सकेंगे और इसलिए उस पर कारगर नियंत्रण रख सकेंगे। काम जीवनका विरोधी नहीं होगा; बल्कि जीवनके सम्पूर्ण ध्येयको सिद्ध करनेका साधन होगा। लोग प्रकृतिके साथ घनिष्ठ सम्पर्कमें रहेंगे और मुक्त सूर्य-प्रकाश, ताजी हवा और प्रकृतिके मुफ्त

* हरबर्ट रीड: 'एज्युकेशन फॉर पीस'।

निर्णय-शक्ति और आरंभ-शक्ति उनमें छीन भी जाती है। इस प्रकार अमलमें तो यंत्र-विज्ञानकी प्रगतिका परिणाम यह हुआ है कि उससे व्यक्तिगत स्वतंत्रताका ह्रास हो गया है और छोटे छोटे गुटों या समूहोंके हाथोंमें शासनका भयंकर केन्द्रीकरण हो गया है। राजनीतिक प्रभुओंके हाथमें दबाव और प्रचारके जितने कारगर हथियार आज हैं, उतने उनके पूर्वगामियोंके हाथमें कभी नहीं रहे। इन साधनोंसे वे किसी भी सार्वजनिक विरोधको दबा सकते हैं और आम लोगोंको मंत्रमुग्ध कर सकते हैं। इन साधनोंकी तुलनामें लोगोंके पास ऐसी कोई भी चीज नहीं होती, जिससे वे अपनी स्वतंत्रताओंकी रक्षा कर सकें। समाजकी बढ़ती हुई पेचीदगी और उससे उत्पन्न अरक्षितताके कारण स्थिति और भी गंभीर हो गई है। जिन राष्ट्रोंको खुराकके लिए बाहरके साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है, उन्हें सदा यह डर होता है कि कोई विदेशी सत्ता उनके जीवन-स्रोतोंको काटकर उन्हें भूखों मार सकती है और गुलाम बना सकती है। इसके सिवा, नगर-निवासी और औद्योगिक मजदूर आम तौर पर आर्थिक उतार-चढ़ाव और मंदी वगैरासे पैदा होनेवाली बेकारी और औद्योगिक अस्थिरतासे भयभीत रहते हैं। इससे अरक्षाकी भावना और डरकी मनोदशा उत्पन्न होती है, जिसका युद्ध चाहनेवाले लोग प्रजामें घबराहट पैदा करनेके लिए आसानीसे दुरुपयोग कर सकते हैं। इसका एकमात्र उपाय यह है कि जीवन-यापनके तंत्रको जड़से सादा बनाया जाय और समाजका उसकी बुनियादी जरूरतोंके मामलेमें वैयक्तिक और प्रादेशिक स्वयंपूर्णताके आधार पर पुनर्गठन किया जाय।

१३

हमारे सामने जो चित्र आता है वह बीमार मनुष्य और बीमार समाजका है। अन्यथा संसारमें उद्योग-धंधोंमें सबसे आगे बढ़े हुए देश संयुक्त राज्य अमरीकामें आत्महत्याओंका सबसे अधिक होना क्या जाहिर करता है? शान्ति और युद्धके प्रश्नके साथ

घनिष्ठतासे जुड़ा हुआ सवाल लोगोंके मानसिक स्वास्थ्यका है। लड़ाईकी वृत्ति मानव-स्वभावमें जन्मजात है, इसे मिटाया नहीं जा सकता। परन्तु इसका रूपांतर किया जा सकता है। यदि उसे समाजके लिए उपयोगी, उत्पादक कार्यके रूपमें प्रगट होनेका मौका नहीं मिलता, तो वह चित्तकी विकृतिका रूप ले लेती है। आजकलके उत्पादनके तरीकोंने भी मजदूरोंको उत्पादक संतोषके अनुभवसे वंचित करके उनमें मानसिक विकृति पैदा कर दी है। "इसके विपरीत, धरतीमाताके साथ निकट संबंध होनेसे किसानमें सुरक्षाकी भावना और मानसिक संतुलन होता है। किसानको भी ऋतुओंकी उच्छृंखलताका सामना करना पड़ता है, परन्तु इन विपत्तियोंके कारण उसे प्रकृतिसे लड़नेकी नयी प्रेरणा मिलती है या वह दस्तकारियोंका आश्रय ले लेता है। इससे उसमें शान्तिकी चाह पैदा होती है।" * यही बात कारीगरों पर लागू होती है। "उनकी युद्धवृत्ति रचनात्मक कार्यके रूपमें व्यक्त होती है और इसलिए उनमें अपनी विनाशक वृत्तियां प्रगट करनेकी इच्छा नहीं रहती।" *

इसलिए गांधीजी ऐसे ग्रामीण समाजोंकी प्रणालीकी ओर लौट जानेका समर्थन करते थे, जिनमें से हरएक तमाम बुनियादी जरूरतोंके मामलेमें बहुत कुछ आत्म-निर्भर हो। ऐसी समाज-व्यवस्थामें खेती और उद्योग साथ साथ चलेंगे। मशीनें सर्वथा उठा नहीं दी जायगी। लोग उन्हें कहीं अधिक मर्यादामें रखेंगे। लेकिन वे ऐसी सीधी-सादी होंगी, जिन्हें लोग खुद चला सकते हैं, खुद रख सकते हैं और नियंत्रित कर सकते हैं। इस सादी व्यवस्थामें समाज ऐसी छोटी छोटी इकाइयोंका बना होगा, जिनका प्रबंध आसानीसे किया जा सके और जो परस्पर सहयोगके बन्धनमें बंधी होंगी। लोग अपने आसपासकी हालतको समझ सकेंगे और इसलिए उस पर कारगर नियंत्रण रख सकेंगे। काम जीवनका विरोधी नहीं होगा, बल्कि जीवनके सम्पूर्ण ध्येयको सिद्ध करनेका साधन होगा। लोग प्रकृतिके साथ घनिष्ठ सम्पर्कमें रहेंगे और मुक्त सूर्य-प्रकाश, ताजी हवा और प्रकृतिके मुफ्त

* हरबर्ट रीड: 'एज्युकेशन फॉर पीस'।

है।" जुंग हमें बताता है कि आज संसार चित्तकी जिन विकृतियोंसे पीड़ित है, उनके पीछे **"वे सारे स्वाभाविक और आवश्यक कष्ट छिपे हुए हैं, जिन्हें बीमार सहन करनेको राजी नहीं था।"** और फिर "मानसोपचारका उच्चतम ध्येय यह नहीं है कि रोगीको सुखकी किसी असंभव स्थितिमें पहुंचा दिया जाय, परन्तु यह है कि उसे इतनी दृढ़ता और दार्शनिक धीरता प्राप्त करनेमें सहायता दी जाय कि वह जरूरी कष्ट बरदाश्त कर सके।"

इसका अर्थ यह है कि हमें अपनी शारीरिक इच्छाओं पर स्वेच्छापूर्वक रोक लगाना और बुनियादी आध्यात्मिक मूल्यों और यम-नियमोंको फिरसे अपनाना सीखना पड़ेगा। इससे हम बच नहीं सकते। आज भी पश्चिममें अणुबमके डरसे आबादीके छोटी छोटी इकाइयोंमें 'बिखरने' (Dispersion) का नारा बुलंद हो रहा है। परन्तु इसके अलावा हमें इस नारेकी जरूरत भी महसूस करनी होगी : 'फिर भूमिको अपनाओ', फिर सभी अत्यावश्यक बातोंमें क्षेत्रीय आत्म-निर्भरताकी शरण लो, फिर लोगोंके मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए सादा जीवन और आध्यात्मिक मूल्योंका आश्रय लो — क्योंकि इन्हींके आधार पर विश्व-सुरक्षा और विश्वशांतिकी इमारत खड़ी की जा सकती है।

१४

अहिंसक वृत्ति अविभाज्य है। उसे जीवनके सभी क्षेत्रोंमें संचरित करना होगा, नहीं तो हमारी अहिंसा लंगड़ी होगी और उसका वास्तविक स्वरूप विलुप्त हो जायगा। आबादीके बढ़नेका प्रश्न ऐसा है कि अगर इसे ठीक तरहसे नहीं निबटाया गया, तो इस चट्टान पर अहिंसक समाज-व्यवस्था खड़ी करनेकी तमाम कोशिशोंकी नाव टकराकर टूट जायगी। इसलिए इस बड़ेसे बड़े प्रश्नको सुलझानेमें अहिंसक वृत्तिका प्रयोग करना ही चाहिये। इसके केवल तीन हल संभव हैं : (१) अतिरिक्त आबादीको लड़ाइयोंमें खपा दिया जाय, (२) राजनीतिक या आर्थिक उपनिवेशवादके द्वारा उसका पोषण किया जाय, और (३) संतति-नियमन किया जाय। अहिंसाके

दिये हुए सौन्दर्यके आनंद लूटेंगे। यही आनंद शहरी कारखानोंके मजदूरोंको थोड़ीसी मात्रामें भी बहुत खर्च करने पर कृत्रिम रूपमें मिलते हैं।

इसका मतलब जरूरी तौर पर 'नीचा जीवन-स्तर' या कठोर परिश्रमका जीवन नहीं है। कारण, अधिक कार्यक्षम प्रक्रियाओं और औजारोंके प्रयोगकी कोई मर्यादा नहीं होगी। कोई समाज अन्तमें किस स्तरके यंत्रों और संगठनको अपनायेगा, यह मनमाने ढंगसे निश्चित नहीं किया जा सकता। कदाचित् वह संबंधित लोगोंकी आवश्यकता, क्षमता और विचारधाराके अनुसार समय समय और स्थान स्थान पर बदलता रहेगा; मार्गदर्शक सिद्धान्त यह होगा कि यंत्र सादे हों और साधारण लोगोंकी आर्थिक शक्तिके भीतर हों, ताकि वे व्यक्तिगत या सामूहिक रूपमें उनके मालिक बन सकें। उनसे मानव-श्रमको सहायता मिलनी चाहिये, न कि वे उसका स्थान ले लें। यही बात जो चालक शक्ति काममें ली जाय उस पर भी लागू होगी।

इस प्रणालीका लक्ष्य किसी ऐसी सभ्यताका विकास करना नहीं है, जिसे गांधीजीने 'बिना कांटेके गुलाब' की उपमा दी थी। वह सब प्रकारके शरीर-श्रमको 'आदमको दिया हुआ शाप' समझकर उठा नहीं देगी। इसके विपरीत गांधीजीकी राय थी कि पसीनेकी कमाई खाना व्यक्ति और समाजके स्वास्थ्य, संतोष और आन्तरिक शान्तिके लिए एक लाजिमी शर्त है और आजकलकी बहुतसी सामाजिक बुराइयां 'मेहनतकी रोटी' का नियम भंग करनेसे पैदा होती हैं। जुंगने स्विट्ज़रलैण्डके मानस-शास्त्रियोंकी समितिमें दिये गये अपने एक भाषणके दौरानमें ठीक ही कहा था: "जीवनकी चरितार्थताके लिए सुख और दुःखके बीच संतुलन होना चाहिये; परन्तु चूंकि दुःख स्वयं अप्रिय होता है, इसलिए लोगोंको इस बारेमें विचार करना स्वभावतः नापसन्द होता है कि कितनी चिन्ता और कितना शोक नियतिने मनुष्यके भाग्यमें लिख दिया है। इसलिए वे प्रगति आदि लुभावने शब्दोंका प्रयोग करते हैं। . . . वे यह भूल जाते हैं कि दुःखकी मात्रा पूरी न हो चुकी हो तो सुख जहर बन जाता

है।" युंग हमें बताता है कि आज संसार चित्तकी जिन विकृतियोंसे पीड़ित है, उनके पीछे "वे सारे स्वाभाविक और आवश्यक कष्ट छिपे हुए हैं, जिन्हें बीमार सहन करनेको राजी नहीं था।" और फिर "मानसोपचारका उच्चतम ध्येय यह नहीं है कि रोगीको सुखकी किसी असंभव स्थितिमें पहुंचा दिया जाय, परन्तु यह है कि उसे इतनी दृढ़ता और दार्शनिक धीरता प्राप्त करनेमें सहायता दी जाय कि वह जरूरी कष्ट बरदाश्त कर सके।"

इसका अर्थ यह है कि हमें अपनी शारीरिक इच्छाओं पर स्वेच्छापूर्वक रोक लगाना और बुनियादी आध्यात्मिक मूल्यों और यम-नियमोंको फिरसे अपनाना सीखना पड़ेगा। इससे हम बच नहीं सकते। आज भी पश्चिममें अणुबमके डरसे आबादीके छोटी छोटी इकाइयोंमें 'बिखरने' (Dispersion) का नारा बुलंद हो रहा है। परन्तु इसके अलावा हमें इस नारेकी जरूरत भी महसूस करनी होगी - 'फिर भूमिको अपनाओ', फिर सभी अत्यावश्यक बातोंमें क्षेत्रीय आत्म-निर्भरताकी शरण लो, फिर लोगोंके मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए सादा जीवन और आध्यात्मिक मूल्योंका आश्रय लो — क्योंकि इन्हींके आधार पर विश्व-सुरक्षा और विश्वशांतिकी इमारत खड़ी की जा सकती है।

१४

अहिंसक वृत्ति अविभाज्य है। उसे जीवनके सभी क्षेत्रोंमें संचरित करना होगा, नहीं तो हमारी अहिंसा लंगड़ी होगी और उसका वास्तविक स्वरूप विलुप्त हो जायगा। आबादीके बढ़नेका प्रश्न ऐसा है कि अगर इसे ठीक तरहसे नहीं निबटाया गया, तो इस चट्टान पर अहिंसक समाज-व्यवस्था खड़ी करनेकी तमाम कोशिशोंकी नाव टकराकर टूट जायगी। इसलिए इस बड़ेसे बड़े प्रश्नको सुलझानेमें अहिंसक वृत्तिका प्रयोग करना ही चाहिये। इसके केवल तीन हल संभव हैं: (१) अतिरिक्त आबादीको लड़ाइयोंमें खपा दिया जाय, (२) राजनीतिक या आर्थिक उपनिवेशवादके द्वारा उसका पोषण किया जाय, और (३) संतति-नियमन किया जाय।

संदर्भमें इन तीनों उपायोंमें से पहले दोको तो तुरंत अस्वीकार कर देना होगा। तीसरे उपायके बारेमें यह बात है कि अहिंसक समाजके बुनियादी सिद्धान्तोंके अनुसार तो पूरे या अधूरे आत्म-संयम पर आधारित उपाय ही उचित माने जायंगे। कारण, अगर हम इस प्रश्न और अन्य प्रश्नोंके संबंधमें एक ही रवैया न रखें, तो अपनी शारीरिक आवश्यकताओं पर स्वेच्छापूर्वक अंकुश रखनेके दर्शनका सफल पालन नहीं हो सकता। एक ही साथ "बुद्धिमान और विमूढ़, सौम्य और क्रुद्ध, वफादार और तटस्थ कौन हो सकता है?"

१५

आज हमारे सामने यह खतरा खड़ा है कि एक तरफ तो दुनियाकी आबादी बराबर बढ़ रही है और दूसरी ओर ऐसा लगता है कि खाद्य-सामग्री कम होती जायगी। जमीनका कटाव और उसके उपजाऊपनमें होनेवाली कमी विश्व-समस्याएं बन गई हैं। विशेषज्ञोंने हमें चेतावनी दी है कि पैसेके मूल्यों और जल्दी मुनाफा कमानेके लिए प्रकृतिका शोषण करनेकी इच्छा पर आधारित हमारी वर्तमान अर्थ-व्यवस्थाने मरुभूमियोंका तेजीसे विस्तार करना शुरू कर दिया है और यदि सभ्यताको वैसे ही दीर्घकालिक ह्राससे बचना है जिसने उत्तरी अफ्रीका और निकट-पूर्वको सदियों तक बरबाद किया, तो हमें शोषणकी अर्थ-व्यवस्थासे मुंह मोड़कर संरक्षणकी अर्थ-व्यवस्था (Economy of Conservation) की ओर आना पड़ेगा। गांधीजीकी बतायी हुई अर्थ-व्यवस्था संरक्षणकी अर्थ-व्यवस्था है। इस अर्थ-व्यवस्थामें अधिकसे अधिक आबादीको अनिश्चित काल तक भूमि पर इस तरह रखा जा सकता है कि वह तन्दुरुस्त और उचित आराममें रहे और जमीनका ऊपजाऊपन भी न घटे। इस प्रणालीके प्रमुख लक्षण ये हैं:

(१) यांत्रिक, बड़े पैमानेकी या सामूहिक खेती न करके छोटे पैमाने पर विविध प्रकारकी सघन खेती की जाय। इस प्रणालीमें प्रति खेतिहर मजदूरकी पैदावारके बजाय कुल पैदावार सबसे अधिक होती

है; (२) खेतीसे संबंधित कुटीर-उद्योगोंका विकास; (३) पशुओं पर आधारित अर्थ-व्यवस्था। उसमें 'वापिस करनेके नियम' (Law of Return) का कड़ाईसे पालन किया जायगा, अर्थात् जो तत्त्व जमीनसे ले लिये जाते हैं वे खादके रूपमें उसे लौटा दिये जायेंगे, क्योंकि इसके बिना भूमिका स्वास्थ्य और उपजाऊपन कायम नहीं रखा जा सकता; (४) पशु, मनुष्य और वनस्पति-जीवनके बीच उचित संतुलन और संबंध, क्योंकि वास्तवमें सामाजिक स्वास्थ्य और स्थिरता इन तीनोंके मेलसे ही होती है; और (५) सामाजिक सुरक्षाकी कीमतके तौर पर मशीनोंकी स्पर्धाके विरुद्ध मनुष्य और पशु दोनोंकी शक्तिकी विवेकपूर्वक रक्षा।

१६

अहिंसक और शोषणहीन समाज-व्यवस्थावाली रचनाके साधनके रूपमें गांधीजीने हमें अपनी वह शिक्षा-पद्धति दी जो बुनियादी अथवा वर्धा शिक्षा-प्रणालीके नामसे मशहूर है। उसका तरीका यह है कि किसी समाजोपयोगी दस्तकारीके शिक्षण और अभ्यासके द्वारा बच्चोंकी केवल बौद्धिक शक्तिका ही नहीं, बल्कि शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियोंका भी विकास किया जाय। इसकी जड़में अहिंसाका सिद्धान्त है। यह प्रणाली इस सिद्धान्त पर आधारित है कि 'विचारशील हाथ' (thinking hand) की बुद्धिपूर्वक संचालित प्रवृत्तिके जरिये बालककी बुद्धि और समूचे व्यक्तित्वका विकास किया जा सकता है। अब पश्चिममें भी यह अनुभव किया जा रहा है कि सफल राष्ट्र-निर्माताओं और लोकतंत्रके निर्माताओंकी पीढ़ी 'भ्रम' के वातावरणमें पैदा नहीं की जा सकती। यानी अगर स्कूल व्यक्ति और समाजके जीवनकी समस्याओंसे बहुत दूर 'तीन लोकसे मथुरा न्यारी' जैसी जगह हो, तो वहां राष्ट्र और लोकतंत्रके निर्माता पैदा नहीं हो सकते। बुनियादी तालीमकी वर्धा-पद्धति बच्चोंको सिखाती है कि वे अपनी ही कोशिशोंसे अपने परिवार और समाजकी समस्याएं अहिंसक और लोकतांत्रिक ढंग से

हल करें। सामाजिक तनाव, धार्मिक सहिष्णुता, स्वशासन, खुराक, उसकी खेती और उसे तैयार करनेकी प्रक्रियायें, कपड़ा और कूड़ा-करकटको ठिकाने लगाना वगैरा समस्याओंको अहिंसक और लोक-तांत्रिक ढंगसे और समझपूर्वक निवटाना सीखकर यानी अपनी प्रत्येक प्रवृत्तिसे संबंधित सारा आवश्यक ज्ञान हासिल करके वे केवल जीवनकी सारी शिक्षा ही नहीं प्राप्त करते, परन्तु ऐसी शिक्षा भी प्राप्त करते हैं जिसके साथ यह आश्वासन भी जुड़ा होता है कि इस प्रकार हासिल किये हुए ज्ञानका सही तौर पर उपयोग किया जायगा।

इस प्रकार बुनियादी तालीम केवल एक नयी शिक्षा-प्रणाली ही नहीं है, बल्कि एक विशेष आदर्श — विश्वशांति और विश्व-भ्रातृत्व — की सिद्धिकी कला भी है। और इसलिए उस पर हमें अत्यंत गंभीर विचार करना चाहिये।

गांधीजीकी कार्य-पद्धति और विश्व-संकट*

हम जो चर्चाएं करते रहे हैं उनके बीच यह सवाल बार बार पूछा गया है कि गांधीजी अहिंसाका सन्देश इतने सारे लोगों तक पहुंचा कैसे सके और इतने विशाल पैमाने पर उनसे अहिंसाका पालन कैसे करा सके?

गांधीजीकी कार्य-पद्धतिका आरंभ-बिंदु यह था कि अहिंसा दुर्बलोंका बल है। इसलिए वह जीवनमें छोटी और तुच्छ मानी जानेवाली बातोंका उपयोग करती है; उसके हथियार भी नगण्य-से दीखते हैं। भारतमें ४० करोड़ लोग थे। संख्या तो हमारे पास थी; लेकिन संख्या कमजोरीका भी कारण हो सकती है। गांधीजीकी समस्या यह थी कि इस संख्याको शक्तिका स्रोत कैसे बनाया जाय — और शक्ति भी पशुबलकी नहीं, बल्कि अहिंसाकी शक्ति। उनके साधन गरीब, अपढ़, अज्ञान पुरुष, स्त्रियां और बच्चे थे। उनके सामने प्रश्न ऐसा कार्य सोच निकालनेका था, जिसे ये भोले-भाले लोग कर सकें और जो उनके भीतर छिपी हुई शक्तिको बाहर लाकर उसे स्वातंत्र्य-संग्राममें लगा दे। इसलिए सामूहिक प्रवृत्तिके गांधीजीके सारे कार्यक्रमोंमें बहुत ही सादगी होती थी। अहिंसाकी उनकी तालीम भी बहुत छोटी छोटी बातोंके द्वारा दी जाती थी, जिन्हें वे बुनियादी आध्यात्मिक अनुशासन कहते थे।

उन्होंने मिट्टीमें से वीर पैदा किये। वे ऐसा कर सके, क्योंकि सत्यका वे जिस रूपमें दर्शन करते थे उसीके अनुसार संपूर्ण जीवन व्यतीत करनेका वे सतत प्रयत्न करते रहे। सत्यका दावा करना ही काफी नहीं, उसकी घोषणा करना भी काफी नहीं, जरूरत यह है कि उसकी घोषणा आचरणसे की जाय। उनका प्रचारका तरीका

---

* यह वह मौलिक वक्तव्य है जो लेखकने विचार-गोष्ठीमें अपना निबंध पेश करते समय दिया था।

है, खासकर ऐसी प्रवृत्तियोंका जिनका संबंध हमारी प्रारंभिक आवश्यकताओंकी पूर्तिसे है, जब कि हमें जो शिक्षा दी जाती है या हमें उपदेशके तौर पर जो कहा जाता है उसका प्रभाव कम पड़ता है। चरखेका चालीस करोड़ मनुष्योंकी बुनियादी जरूरतोंके साथ गहरा संबंध था। उसने गांधीजीको जन-साधारणकी शिक्षाका अस्त्र दे दिया। सब प्रकारकी शिक्षाका ध्येय यह बताया गया है कि वह हम सबके लिए सम्यक् विचार और सम्यक् आचारको स्वाभाविक बना देती है। क्या रस्किनने कहीं यह नहीं कहा है कि सारी शिक्षाका लक्ष्य मनुष्यके लिए सत्यके प्रेम और क्रूरताकी घृणाको स्वाभाविक बना देना है? चरखा किसी समय भारतके पिछड़ेपन, शोषण और दासत्वकी निशानी था। गांधीजीने उसे अहिंसाका प्रतीक और अहिंसाका अनुशासन और संगठन पैदा करनेका साधन बना दिया। इसमें वे अपना सन्देश छोटी छोटी झोंपड़ियोंके निवासियों तक भी पहुंचा सके और उनके तथा कार्यकर्ताओंके बीच सहयोगका जीवित सम्बन्ध कायम कर सके। इसी कारण राष्ट्रव्यापी पैमाने पर अहिंसक सामूहिक कार्रवाई शक्य बनी।

उनकी नजरमें चरखेकी सार्वत्रिकता उसकी सबसे कीमती विशेषता थी। उनकी अहिंसक कार्य-पद्धतिका आधार उनका यह आविष्कार था कि छोटी और तुच्छ दिखाई देनेवाली बातें जब लाखों लोग मिलकर एक ज्ञानपूर्वक किये हुए प्रयत्नके अंगके रूपमें करते हैं, तब उसके परिणाम उन परिणामोंसे कहीं बड़े होते हैं जो किसी एक व्यक्तिकी कोशिशसे हो सकते हैं या जो व्यक्तियोंकी अलग अलग कोशिशोंको जोड़ लेनेसे हो सकते हैं। गांधीजीकी तमाम प्रवृत्तियोंमें यह चीज समान रूपसे पाई जाती थी कि उन्हें अनन्त गुना बनाया जा सकता था।

कल हम इस प्रश्नकी चर्चा कर रहे थे कि जो राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघके साथ सहयोग नहीं करते हैं उनका क्या किया जाय? उन तक हमारी पहुंच कैसे हो? साम्यवादके दुष्प्रभावको या क्रेमलिनके और हिलानेको ही सारी बुराइयोंकी जड़ बतानेसे कोई लाभ नहीं

होगा। मैं साम्यवाद अथवा उसकी चालबाजियोंका प्रशंसक नहीं हूं। परन्तु हम समस्याकी जड़ तक पहुंचनेकी कोशिश तो करें। यह क्या बात है कि लोग साम्यवादी प्रचारके असरमें इतने जल्दी आ जाते हैं? वह क्या चीज है जो साम्यवादको इतना प्रभावशाली बनाती है? वह चीज यह है कि दुर्बल और कम उन्नत राष्ट्रोंको बलवान राष्ट्र सताते और चूसते हैं और बड़ी शक्तियोंके हाथों प्रतिक्रियावादको समर्थन मिला है और अब भी मिलता है।

उस दिन हम चीनकी 'हठधर्मी' की बात कर रहे थे। चीनमें बड़ी शक्तियोंके क्या कारनामे रहे हैं? अफीमकी लड़ाई, बॉक्सर विद्रोह और विदेशियोंके विशेषाधिकार। इन सबका क्या अर्थ है? पश्चिमी लोकतंत्रोंने चीन, वियेतनाम, अफ्रीका और यूरोपमें भ्रष्ट और प्रतिक्रियावादी शासनोंकी हिमायत की है। यही कारण है कि चीनी लोगोंको पश्चिमी ताकतों पर इतना अविश्वास है। ऐसा न होता तो चीनमें आज शायद लोकतंत्र होता। गांधीजीके दृष्टिकोणके अनुसार चीनके प्रति हमारा क्या रवैया होना चाहिये? सीधा उत्तर यह है कि उसे बिलाशर्त और बगैर देरके संयुक्त राष्ट्रसंघमें शामिल कर लें। और यह कोई रणनीति या चालबाजीके तौर पर न हो, बल्कि विलम्बित न्यायके एक हार्दिक कार्यके रूपमें हो। यदि कांग्रेसमें गांधीजीका कोई विरोधी होता था, तो वे उसे कार्य-समितिके बाहर न रखकर भीतर ही रखते थे। वे कहा करते थे: "अगर वह अन्दर होगा तो मैं उस पर ज्यादा असर डाल सकूंगा। बाहर रहकर वह मेरी अहिंसाके सीधे प्रभावसे परे रहेगा।" और मैं आपको बताऊं कि परिणामोंसे उनकी यह कार्रवाई सही साबित होती थी।

संसारकी तमाम दलित और पीड़ित जातियोंमें आज जागृतिका ज्वार आ रहा है और यह हमारा सौभाग्य है कि डॉ० बंच हमारे बीचमें हैं। वे इन लोगोंमें से कुछकी ओरसे बहुत अधिकारके साथ बोल सकते हैं। क्या गांधीजीका तरीका यहां किसी तरह लागू हो सकता है? अगर हम इन लोगोंके लिए शोषणका मुकाबिला अहिंसक

उपायोंसे करना संभव बना सकें, तो संसारभरमें हम अहिंसाकी आधी लड़ाई जीत लेंगे।

मुझे याद है कि दक्षिण अफ्रीकासे अफ्रीकियोंका एक शिष्ट-मंडल एक बार गांधीजीके पास आया था और उसने उनसे पूछा था: "बताइये हम क्या करें? क्या हमारे लिए कोई आशा है?" उनका जवाब यह था: "यदि कोई एक वस्तु आपको बचा सकती है तो वह है चरखा और उसके द्वारा सूचित वस्तुएं।" अपनी ओरसे सहायताका प्रस्ताव करते हुए उन्होंने यह भी कहा था कि उनके दर्जनभर नौजवानोंको विविध रचनात्मक कामोंकी तालीम देकर वापस भेज दिया जायगा, ताकि वे अपने लोगोंको इसी तरहकी शिक्षा देकर उनका संगठन कर सकें। इस सुझाव पर आपको गंभीर विचार करना चाहिये। शायद आपको इस सुझावकी सादगी पर हंसी आयेगी। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यह हंसीकी बात नहीं है।

अफ्रीकाका मूल निवासी एक स्वातंत्र्य-प्रेमी प्राणी है। उसे किसीकी गुलामी करनेसे घृणा है। उसे अपना श्रम बेच देनेको बाध्य करनेके लिए अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करनेकी खातिर गोरे प्रवासियों पर निर्भर बना दिया जाता है। जब जरूरतें नहीं होतीं तो वे कृत्रिम रूपमें पैदा कर दी जाती हैं। उदाहरणके लिए, दक्षिण अफ्रीकामें एक उपनियम है कि किसी जूलू या बंटूको किसी शहरी क्षेत्रमें जानेके लिए एक निश्चित ढंगका कपड़ा पहनना ही चाहिये। उसे वहां जाना तो पड़ता ही है। इसलिए उसे वह कपड़ा खरीदना पड़ता है। अफ्रीकियोंके श्रमको हथियानेका एक और उपाय यह किया जाता है कि उनमें शराब पीनेकी आदत डाली जाती है और आबकारीके नियम लागू किये जाते हैं। उन्हें बेगार करके कपड़ा खरीदनेको मजबूर क्यों किया जाय और उन्हें शराबसे बिलकुल परहेज करना क्यों न सिखाया जाय? प्रकृतिने उन्हें वे तमाम साधन प्रदान किये हैं जिनसे वे सुखी, संतोषमय और सभ्य जीवन बिता सकें। उन्हें केवल जीवन और सभ्यताकी कलायें और अहिंसाका

परिशिष्ट – क

सशस्त्र आक्रमण और अहिंसक प्रतिरोध

दूसरे विश्वयुद्धमें बर्मा पर जापानी आक्रमण होनेके बाद जापानी सेनाके भारत पर छा जानेका खतरा था। ब्रिटिश अधिकारी डरके मारे घबरा गये थे। भारतके उप-प्रधान सेनापति जनरल मोल्सवर्थने घोषणा कर दी थी कि ब्रिटिश सेना रक्षाकी सुदूर पंक्ति तक पीछे हट जायगी और भारतीय प्रदेशके बड़े-बड़े भाग जापानी हमलेके लिए खुले छोड़ दिये जायंगे। ब्रिटिश कर्मचारियोंने तो दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता और उड़ीसाके कुछ तटवर्ती शहरोंको खाली करानेके लिए योजनाएं भी जारी कर दी थीं। लेकिन लोगों पर उनका अविश्वास इतना गहरा था कि हथियार देना तो दूर रहा, उन्हें इस बातकी भी इजाजत नहीं थी कि वे आत्मरक्षाके लिए अपने स्वयंसेवक-दल बना लें और पहरा लगानेकी व्यवस्था कर लें। मीराबहनने गांधीजीके कहनेसे उड़ीसाका दौरा किया और लोगोंकी लाचारी, घबराहट और अंग्रेजोंके विरुद्ध रोषकी भावनाकी ब्यौरेवार रिपोर्ट भेजी और उनकी सलाह मांगी कि जापानी सेनाएं भारतमें उतर आयें तो लोग क्या करें। मीराबहनके उस पत्र और गांधीजीके उत्तरके प्रस्तुत अंश नीचे दिये जाते हैं:

मीराबहनका पत्र

हम मान लें कि जापानी उड़ीसाके समुद्र-तट पर कहीं उतरें। संभवतः उतरनेके समय कोई बमवर्षा या गोलाबारी नहीं होगी, क्योंकि समुद्र-तट पर बचावका कोई प्रबंध नहीं किया गया है। समुद्र-तटसे वे समतल और सूखे धानके खेतोंको पार करते हुए तेजीसे आगे बढ़ेंगे, क्योंकि यहां केवल नदियों और खाइयोंकी रुकावट होगी; और ये इस समय प्रायः सूखी हैं और कहीं भी

अनुशासन और संगठन सिखानेकी आवश्यकता है, ताकि वे अपने शोषणका अन्त कर सकें।

'दि मारटिरडम ऑफ मैन' के लेखकने अपनी पुस्तकके एक उल्लेखनीय अंशमें बताया है कि अफ्रीकामें सभ्यताके संचार और प्रचारमें कारथेने, तूफ्ने और अज्ञानने क्या योग दिया है (देखिये परिशिष्ट – ख)। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया और गांधीजीकी कार्य-पद्धतिमें सादृश्य स्पष्ट है। आप गरीब लोगोंको उपदेश ही देते नहीं रह सकते; वे आपके उपदेशोंसे ऊब जायेंगे। न आप आम लोगोंको हमेशा सदाचारकी रेखा पर ही सीधा खड़ा रख सकते हैं। लेकिन अगर आप उनसे उनकी रोजमर्राकी जरूरतोंकी दृष्टिसे बात करें और उन्हें यह बतायें कि वे अपने ही प्रयत्नसे और अपने आपसके ही सहयोगसे उन जरूरतोंके बारेमें अपनी आजादी कैसे हासिल कर सकते हैं, तो आप अनुशासन और संगठनके लिए एक ऐसा आधार पैदा कर देते हैं, जिसका दारमदार बल पर और हिंसा पर नहीं परन्तु शांति और अहिंसा पर होता है। इससे उन्हें शक्ति और एकताका बोध प्राप्त होगा और वे अहिंसाके बलसे आक्रमण और शोषणका मुकाबिला कर सकेंगे। इन लोगोंको इस कलासे सुसज्जित कर दीजिये, फिर केवल उनका शोषण और उत्पीड़न ही नहीं मिट जायगा, बल्कि बहुत हद तक साम्यवादकी — जिसका घोषित उद्देश्य तो शोषण और उत्पीड़नका अन्त करना है, परन्तु जो इनके स्थान पर ऐसी चीज ले आता है जो इनसे ज्यादा बुरी न हो तो भी उतनी ही बुरी जरूर है — चुनौती भी खतम हो जायगी।

परिशिष्ट — क

सशस्त्र आक्रमण और अहिंसक प्रतिरोध

दूसरे विश्वयुद्धमें बर्मा पर जापानी आक्रमण होनेके बाद जापानी सेनाके भारत पर छा जानेका खतरा था। ब्रिटिश अधिकारी इसके मारे घबरा गये थे। भारतके उप-प्रधान सेनापति जनरल मोलसवर्थने घोषणा कर दी थी कि ब्रिटिश सेना रक्षाकी सुदूर पंक्ति तक पीछे हट जायगी और भारतीय प्रदेशके बड़े-बड़े भाग जापानी हमलेके लिए खुले छोड़ दिये जायंगे। ब्रिटिश कर्मचारियोंने तो दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता और उड़ीसाके कुछ तटवर्ती शहरोंको खाली करानेके लिए योजनाएं भी जारी कर दी थीं। लेकिन लोगों पर उनका अविश्वास इतना गहरा था कि हथियार देना तो दूर रहा, उन्हें इस बातकी भी इजाजत नहीं थी कि वे आत्मरक्षाके लिए अपने स्वयंसेवक-दल बना लें और पहरा लगानेकी व्यवस्था कर लें। मीराबहनने गांधीजीके कहनेसे उड़ीसाका दौरा किया और लोगोंकी लाचारी, घबराहट और अंग्रेजोंके विरुद्ध रोषकी भावनाकी ब्यौरेवार रिपोर्टें भेजी और उनकी सलाह मांगी कि जापानी सेनाएं भारतमें उतर आयें तो लोग क्या करें। मीराबहनके उस पत्र और गांधीजीके उत्तरके प्रस्तुत अंश नीचे दिये जाते हैं :

मीराबहनका पत्र

हम मान लें कि जापानी उड़ीसाके समुद्र-तट पर कहीं उतरेंगे। संभवतः उतरनेके समय कोई बमवर्षा या गोलाबारी नहीं होगी, क्योंकि समुद्र-तट पर बचावका कोई प्रबंध नहीं किया गया है। समुद्र-तटसे वे समतल और सूखे धानके खेतोंको पार करते हुए तेजीसे आगे बढ़ेंगे, क्योंकि यहां केवल नदियों और खाइयोंकी रुकावट होगी; और ये इस समय प्रायः सूखी हैं और कहीं भी

देते हैं बल्कि ऐसे आदेश जारी करते हैं जिनका पालन किया जाय तो लड़ाईका दिन आनेसे पहले ही उनकी मौत आ जायगी। जब जापानी इस घृणित राज्यका पीछा कर रहे हैं और खास तौर पर जब वे यह कह रहे हैं कि, 'हम तुमसे लड़ने थोड़े ही आ रहे हैं', तब लोग उत्साहसे जापानियोंके मार्गमें रुकावट डालनेको कैसे तैयार हो सकते हैं? परन्तु मैंने देखा है कि देहाती तटस्थताकी स्थिति अपनानेके लिए तैयार हैं। अर्थात् वे जापानियोंको अपने खेतों और गांवों परसे गुजर जाने देंगे और यथासंभव उनके सम्पर्कमें न आनेकी कोशिश करेंगे। वे अपनी खाद्य-सामग्री और रुपया-पैसा छिपा लेंगे और जापानियोंकी सेवा-सहायता करनेसे इनकार कर देंगे। परन्तु ब्रिटिश राज्यके प्रति लोगोंमें घृणा इतनी अधिक है कि कुछ भागोंमें इतना प्रतिरोध भी जुटाना कठिन होगा और अंग्रेज-विरोधी किसी भी चीजका बाहें फैलाकर स्वागत किया जायगा। मेरे खयालसे हमें उस अधिकसे अधिक विरोधकी मात्राका पता लगाना चाहिये, जिसे करने और कायम रखनेकी सामान्य लोगोंसे आशा रखी जा सकती है। और फिर उसीको अपनी निश्चित स्थिति मान लेना चाहिये। कोई स्थिर दीर्घकालीन स्थिति, भले ही वह सौ फीसदी प्रतिरोधकी न हो तो भी, अन्तमें जल्दी टूट जानेवाले सख्त रवैयेसे ज्यादा कारगर होगी।

जिस अधिकसे अधिक टिकनेवाली स्थितिकी आशा साधारण लोगोंमें रखी जा सकती है, वह कदाचित् यह होगी

१. जापानी कोई जमीन, मकान या चल संपत्ति हथियाने लगें, तो उनका मजबूतीसे और प्रायः अहिंसक ढंगसे सामना किया जाय।

२. जापानियोंके लिए कोई बेगार न की जाय।

३. जापानियोंकी हुकूमतमें किसी किस्मकी नौकरी न की जाय। (कुछ प्रकारके शहरी लोगों, सरकारी मौकापरस्तों और दूसरे मार्गोंसे आये हुए भारतीयोंके बारेमें इस पर नियंत्रण रखना कठिन हो सकता है।)

४. जापानियोंसे कोई चीज न खरीदी जाय।

दिखता नहीं है कि नदियोंमें पार न की जा सकें। जहां तक हम पता लगा सके हैं, जापानी-सेनाका और नदियोंमें नावोंका कोई गंभीर प्रयत्न अब तक नहीं किया जायगा, जब तक वे उड़ीसाकी रियासतोंके पहाड़ों और जंगलोंके इलाकोंमें न पहुंच जायं। ब्रिटिश सेना जो भी यह इन रियासतोंके जंगलोंमें छिपी हुई बताई जाती है। संभव यह जमशेदपुरकी सड़कका बचाव करनेकी जीतोड़ कोशिश करे, परंतु उसकी सफलताकी संभावना बहुत थोड़ी होगी। इसका यह अर्थ हुआ कि हम उड़ीसाके उत्तर-पश्चिममें लड़ाई नहीं जानेकी आशा कर सकते हैं। उसके बाद जापानी सेना बिहारमें प्रवेश करेगी। उस समय यह संभावना नहीं है कि जापानी देशभरमें फैल जायंगे, परंतु वे समुद्र-तट और अपनी बढ़ती हुई सेनाके बीच यातायातके मार्गों पर केन्द्रित रहेंगे। ब्रिटिश शासन उससे पहले ही मैदानसे गायब हो गया होगा।

इन घटनाओंके होनेकी हालतमें हमारे सामने समस्या यह होगी कि हम क्या करें?

जापानी सेनाएं खेतों और गांवोंको चीरती हुई झपटेंगी — लोगोंके प्रगट शत्रुके रूपमें नहीं, परंतु ब्रिटिश और अमरीकी युद्ध-प्रयत्नका पीछा और विनाश करनेवाली सेनाओंके रूपमें। उधर लोगोंकी भावनाएं अस्पष्ट हैं। सबसे प्रबल भावना अंग्रेजोंका भय और अविश्वास है और लोगोंके साथ जो व्यवहार किया जा रहा है उससे यह भावना दिन-दिन बढ़ रही है। इसलिए ऐसी हरएक चीजका, जो अंग्रेजोंकी नहीं है या उनसे संबंध नहीं रखती, वे स्वागत करते हैं। एक मजेदार उदाहरण लीजिये। कुछ प्रदेशोंमें देहाती कहते हैं: "अरे, जो हवाई जहाज बहुत शोर करते हैं वे तो अंग्रेजोंके हैं, परंतु चुपचाप उड़नेवाले वायुमान भी हैं और वे महात्माजीके हैं।" मेरे विचारसे इन सीधे भोले-भाले लोगोंके लिए केवल तटस्थताका रवैया ही सीखना संभव है, क्योंकि वास्तवमें यही स्थिति उनके लिए तर्क-संगत हो सकती है। अंग्रेज न केवल उन्हें भाग्यके भरोसे छोड़ते हैं और बमवर्षा आदिसे आत्मरक्षा करने तकको शिक्षा नहीं

देते हैं, बल्कि ऐसे आदेश जारी करते हैं जिनका पालन किया जाय तो लड़ाईका दिन आनेसे पहले ही उनकी मौत आ जायगी। जब जापानी इस घृणित राज्यका पीछा कर रहे हैं और खास तौर पर जब वे यह कह रहे हैं कि, 'हम तुमसे लड़ने थोड़े ही आ रहे हैं', तब लोग उत्साहसे जापानियोंके मार्गमें रुकावट डालनेको कैसे तैयार हो सकते हैं? परन्तु मैंने देखा है कि देहातों तटस्थताकी स्थिति अपनानेके लिए तैयार हैं। अर्थात् वे जापानियोंको अपने खेतों और गावों परसे गुजर जाने देंगे और यथासंभव उनके सम्पर्कमें न आनेकी कोशिश करेंगे। वे अपनी खाद्य-सामग्री और रुपया-पैसा छिपा लेंगे और जापानियोंकी सेवा-सहायता करनेसे इनकार कर देंगे। परन्तु ब्रिटिश राज्यके प्रति लोगोंमें घृणा इतनी अधिक है कि कुछ भागोंमें इतना प्रतिरोध भी जुटाना कठिन होगा और अंग्रेज-विरोधी किसी भी चीजका बाहें फैलाकर स्वागत किया जायगा। मेरे खयालसे हमें उस अधिकसे अधिक विरोधकी मात्राका पता लगाना चाहिये, जिसे करने और कायम रखनेकी सामान्य लोगोंसे आशा रखी जा सकती है। और फिर उसीको अपनी निश्चित स्थिति मान लेना चाहिये। कोई स्थिर दीर्घकालीन स्थिति, भले ही वह सौ फीसदी प्रतिरोधकी न हो तो भी, अन्तमें जल्दी टूट जानेवाले सख्त रवैयेसे ज्यादा कारगर होगी।

जिस अधिकसे अधिक टिकनेवाली स्थितिकी आशा साधारण लोगोंसे रखी जा सकती है, वह कदाचित् यह होगी :

१. जापानी कोई जमीन, मकान या चल संपत्ति हथियाने लगें, तो उनका मजबूतीसे और प्रायः अहिंसक ढंगसे सामना किया जाय।

२. जापानियोंके लिए कोई बेगार न की जाय।

३. जापानियोंकी हुकूमतमें किसी किस्मकी नौकरी न की जाय। (कुछ प्रकारके शहरी लोगों, सरकारी मौकापरस्तों और दूसरे भागोंसे आये हुए भारतीयोंके बारेमें इस पर नियंत्रण रखना कठिन हो सकता है।)

४. जापानियोंसे कोई चीज न खरीदी जाय।

देते हैं, बल्कि ऐसे आदेश जारी करते है जिनका पालन किया जाय तो लड़ाईका दिन आनेसे पहले ही उनकी मौत आ जायगी। जब जापानी इस घृणित राज्यका पीछा कर रहे हैं और खास तौर पर जब वे यह कह रहे हैं कि, 'हम तुमसे लड़ने थोड़े ही आ रहे हैं', तब लोग उत्साहसे जापानियोंके मार्गमें रुकावट डालनेको कैसे तैयार हो सकते है? परन्तु मैंने देखा है कि देहाती तटस्थताकी स्थिति अपनानेके लिए तैयार हैं। अर्थात् वे जापानियोंको अपने खेतों और गावों परसे गुजर जाने देंगे और यथासंभव उनके सम्पर्कमें न आनेकी कोशिश करेंगे। वे अपनी खाद्य-सामग्री और रुपया-पैसा छिपा लेंगे और जापानियोंकी सेवा-सहायता करनेसे इनकार कर देंगे। परन्तु ब्रिटिश राज्यके प्रति लोगोंमें घृणा इतनी अधिक है कि कुछ भागोंमें इतना प्रतिरोध भी जुटाना कठिन होगा और अंग्रेज-विरोधी किसी भी फौजका बाहें फैलाकर स्वागत किया जायगा। मेरे खयालसे हमें उस अधिकसे अधिक विरोधकी मात्राका पता लगाना चाहिये, जिसे करने और कायम रखनेकी सामान्य लोगोंसे आशा रखी जा सकती है। और फिर उसीको अपनी निश्चित स्थिति मान लेना चाहिये। कोई स्थिर दीर्घकालीन स्थिति, भले ही वह सौ फीसदी प्रतिरोधकी न हो तो भी, अन्तमें जल्दी टूट जानेवाले सख्त रवैयेसे ज्यादा कारगर होगी।

जिस अधिकसे अधिक टिकनेवाली स्थितिकी आशा साधारण लोगोंसे रखी जा सकती है, वह कदाचित् यह होगी:

१. जापानी कोई जमीन, मकान या चल सम्पत्ति हथियाने लगें, तो उनका मजबूतीसे और प्राय: अहिंसक ढंगसे सामना किया जाय।

२. जापानियोंके लिए कोई बेगार न की जाय।

३. जापानियोंकी हुकूमतमें किसी किस्मकी नौकरी न की जाय। (इस प्रकारके शहरी लोगों, सरकारी नौकरपेशा और दूसरे भागोंसे आये हुए भारतीयोंके बारेमें इस पर नियंत्रण रखना कठिन हो सकता है।)

४. जापानियोंसे कोई चीज न

बन जायं और जो राष्ट्रीय सरकार ब्रिटिश राज्यके स्थान पर कायम होगी उसकी आज्ञाका पालन करें। यदि अंग्रेज भारतीय हाथोंमें सत्ता सौंपकर व्यवस्थित ढगसे हटे होंगे, तो सारा काम शानदार ढंगसे हो सकेगा और जापानियोंके लिए भारतमें या उसके किसी भी भागमें शान्तिसे जम जाना भी मुश्किल बनाया जा सकेगा, क्योंकि उन्हें ऐसी आबादीसे निबटना होगा जो नाराज और विरोधके लिए उद्यत होगी। यह कहना कठिन है कि क्या होगा? लेकिन इतना काफी है कि लोगोंको अपनेमें विरोध-शक्ति पैदा करनेकी तालीम दे दी जाय — फिर जापानी या ब्रिटिश कोई भी सत्ता क्यों न हो।

(४) इसका उत्तर ऊपर (१) में आ जाता है।

(५) यह अवसर न भी आये, लेकिन आ ही जाय तो सहयोग दिया जा सकता है — वह जरूरी भी हो सकता है।

(६) रास्तेमें मिले हुए हथियारोंके बारेमें तुम्हारा उत्तर आवश्यक और पूरी तरह युक्तिसंगत है। उस पर अमल किया जा सकता है। लेकिन इसका एक दूसरा हल यह भी हो सकता है कि योग्य मनुष्य उन्हें ढूंढकर किसी सुरक्षित स्थानमें जमा कर रखें। यदि उन्हें जमा करके रखना और शरारती लोगोंसे बचा लेना असंभव हो, तो तुम्हारी योजना आदर्श योजना है।

सकते। यदि लोग जापानी सेनाका सामना न कर सकें, तो वे वही करेंगे जो हथियारबंद सिपाही करते हैं। यानी जब वे देखेंगे कि शत्रुकी ताकत ज्यादा बड़ी है और उनकी कुछ चल नहीं सकती तो वे पीछे हट जायेंगे। और यदि वे ऐसा करते हैं तो जापानियोंके साथ कोई लेन-देन करनेका सवाल न तो उठता है, न उठना चाहिये। लेकिन अगर लोगोंमें मरते दम तक जापानियोंका मुकाबिला करनेकी हिम्मत नहीं है और जापानियोंके हमलेवाले प्रदेशको खाली कर देनेकी हिम्मत और शक्ति भी नहीं है, तो वे आदेशोंके प्रकाशमें जो कुछ हो सकता है वह करेंगे। एक चीज उन्हें कभी नहीं करनी चाहिये; और वह है जापानियोंके सामने खुशीसे घुटने टेक देना। वह कायरताका काम होगा और स्वातंत्र्य-प्रेमी लोगोंके लायक नहीं होगा। उन्हें एक आगसे बचकर दूसरी और शायद अधिक भयंकर आगमें नहीं पड़ना चाहिये। इसलिए उनका रवैया सदा ही जापानियोंका मुकाबिला करनेका होना चाहिये। इसलिए ब्रिटिश नोटों अथवा जापानी सिक्कोंका स्वीकार करनेका प्रश्न ही नहीं उठता। वे जापानियोंकी दी हुई किसी चीजको नहीं छुएंगे। जहां तक हमारे अपने लोगोंके साथ लेन-देनका संबंध है, वे या तो विनिमयका आश्रय लेंगे या जो ब्रिटिश सिक्के उनके पास होंगे उनका उपयोग करेंगे और यह आशा रखेंगे कि ब्रिटिश सरकारके स्थान पर जो राष्ट्रीय सरकार आयेगी वह अपनी शक्तिके अनुसार सारे ब्रिटिश सिक्के लोगोंसे ले लेगी।

(२) पुल बनानेमें सहयोग देनेका सवाल ऊपरकी बातमें आ जाता है। इस सहयोगका प्रश्न ही नहीं हो सकता।

(३) यदि भारतीय सिपाही हमारे लोगोंके सम्पर्कमें आयें और उनमें सद्भाव हो, तो हमें उनके साथ भाईचारा कायम करना चाहिये, और अगर वे राष्ट्रका साथ दे सकते हों तो उन्हें इसके लिए निमंत्रण देना चाहिये। संभवतः उन्हें यह वचन देकर लाया गया है कि वे विदेशी जुएसे देशको मुक्त करेंगे। विदेशी होगा नहीं, इसलिए उनसे आशा रखी जायगी कि वे

बन जायं और जो राष्ट्रीय सरकार ब्रिटिश राज्यके स्थान पर कायम होगी उसकी आज्ञाका पालन करें। यदि अंग्रेज भारतीय हाथोंमें सत्ता सौंपकर व्यवस्थित ढंगसे हटे होंगे, तो सारा काम शानदार ढंगसे हो सकेगा और जापानियोंके लिए भारतमें या उसके किसी भी भागमें शान्तिसे जम जाना भी मुश्किल बनाया जा सकेगा, क्योंकि उन्हें ऐसी आबादीसे निबटना होगा जो नाराज और विरोधके लिए उद्यत होगी। यह कहना कठिन है कि क्या होगा? लेकिन इतना काफी है कि लोगोंको अपनेमें विरोध-शक्ति पैदा करनेकी तालीम दे दी जाय — फिर जापानी या ब्रिटिश कोई भी सत्ता क्यों न हो।

(४) इसका उत्तर ऊपर (१) में आ जाता है।

(५) यह अवसर न भी आये, लेकिन आ ही जाय तो सहयोग दिया जा सकता है — वह जरूरी भी हो सकता है।

(६) रास्तेमें मिले हुए हथियारोंके बारेमें तुम्हारा उत्तर आकर्षक और पूरी तरह युक्तिसंगत है। उस पर अमल किया जा सकता है। लेकिन इसका एक दूसरा हल यह भी हो सकता है कि योग्य मनुष्य उन्हें ढूंढ़कर किसी सुरक्षित स्थानमें जमा कर रखें। यदि उन्हें जमा करके रखना और शरारती लोगोंसे बचा लेना असंभव हो, तो तुम्हारी योजना आदर्श योजना है।

परिशिष्ट — ख

निम्नलिखित अंश विनवुड रीडकी 'दि मारटिरडम ऑफ मैन' नामक पुस्तकके 'रिलीजन' नामक अध्यायसे लिये गये हैं:

(पुराने ढंगके) एक अफ्रीकी गांवका रूप आम तौर पर दोनों तरफ झोंपड़ोंवाले रास्तेका होता है। उनकी दीवारें लकड़ी या बांसकी जालियों जैसी होती हैं और छप्पर इस तरह आगे निकला हुआ होता है कि मालिक धूप या बरसातमें उसके नीचे बैठ सके। दरवाजा नीचा होता है; उसमें लेटकर जाना पड़ता है। खिड़कियां नहीं होतीं। घरमें एक ही कमरा होता है। उसके बीचमें आग जलती रहती है जिसे कभी बुझने नहीं दिया जाता, क्योंकि वह अंधेरेमें प्रकाशका काम देती है और नौकर, साथी और रक्षक फरिश्तेका काम करती है। उससे गंदी हवा शुद्ध होती है। छत और दीवारों पर धुएंका रंग जम जाता है, मगर वे साफ होती हैं; एक कोनेमें अच्छी तरह काटकर रखा हुआ लकड़ियोंका ढेर होता है और दूसरे कोनेमें पानीका एक बड़ा मिट्टीका घड़ा होता है, जिस पर एक तुंबी या पानी पीनेका ऐसा ही कोई दूसरा बरतन तैरता रहता है। दीवारों पर भाले, तीर, कमान और जाल खूटियोंसे लटकते रहते हैं। मान लीजिये कि रात हो गई है; चार पांच काली शकलें गोलाकार आगकी तरफ पैर करके पड़ी हैं और दो कुत्ते कान खड़े करके चुपकेसे राखके पास आकर दुबक जाते हैं। राख सफेद और ठंडी होती जा रही है।

दिन निकलता है; दीवारोंकी दरारों और छिद्रोंमें से हल्की सी रोशनी नजर आती है। सोनेवाले उठकर अपने बिस्तर यानी चटाइयां समेटते हैं और लकड़ीके जिन गोल कुन्दोंसे उन्होंने तकियोंका काम लिया था उन्हें एक तरफ रख देते हैं। पुरुष अपने धनुष-बाण दीवारसे लेता है, अपने कुत्तोंके गलेमें लकड़ीके घुंघरू बांध देता है और झाड़ियोंमें निकल जाता है। स्त्रियां आगमें ईंधन डालती हैं और

एक औंधे टोकरेको उठाती है। उसमें से मुर्गी और उसके बच्चे निकल-कर एकदम खुले दरवाजेकी ओर दौड़ते हैं और बाहर जाकर अपना दाना ढूंढ़ते हैं। स्त्रियां कुदालियां लेकर खेतोंको चल देती हैं या अपने घड़े लेकर नदी पर पानी भरने जाती हैं। ये अपनी कमरमें आगे-पीछे किसी छालका बना हुआ वस्त्र पहनती हैं। इस छालको पानीमें भिगोकर और कूटपीट कर चमड़ेकी तरह लचकदार बना लिया जाता है। हर आदमीके झोंपड़ेके आसपास ये कपड़ेके पेड़ लगे होते हैं। कुमारी लड़कियां कोई कपड़ा नहीं पहनती। परन्तु उन्हें हाथ-पैरमें लोहेके कड़े पहनकर, कानोंमें फूल लगाकर और गलेमें मूंगेकी तरह लाल बेरोंके हार पहनकर, सफेद दानोंकी कमरपेटियां लगाकर, बालोंमें तेल डालकर और जूड़ा बांधकर तथा कभी कभी मांगमें सफेद राख लगाकर शृंगार करने दिया जाता है।

महिलाएं घड़े भरती और प्रातःस्नान करती हैं और साथ साथ अपने पतियोंके गुण-दोषकी चर्चा करती हैं। हवा गीली और ठंडी होती है और पेड़ और घास ओससे भीगे होते हैं; परन्तु थोड़ी देरमें सूरज चमकने लगता है, और मेंहकी बूंदों जैसी भारी और बड़ी ओसकी बूंदें गिर जाती हैं; चिड़ियां चहचहाती हैं; फूलोंके सिकुड़े हुए पत्ते फैलते हैं, और उन पर तितलियां और मधुमक्खियां सुबहसे ही भिनभिनाने आ जाती हैं। जंगलमें मंगल होने लगता है, जैसा किसी बड़े कारखानेमें काम शुरू होने पर होता है।

जब सूरज चढ़ जाता है तब लड़के झाड़ियोंसे वनस्पतिकी बोतलोंमें ताड़की झागदार मदिरा लेकर आते हैं। अफ्रीकीका मदिरालय, उसका काच व चीनीके बरतनोंकी दुकान और कपड़ेका गोदाम सब पेड़ोंमें होते हैं। गांवके बीचमें एक तरहकी छपरी होती है, जिसकी छत खुले डंडों पर टिकी होती है। यह चर्चाघर है जहां इस समय बैठकर बूढ़े लोग राजकाजकी चर्चा करते हैं और कानूनी मुकदमोंके फैसले देते हैं। हर व्यक्ति बोलते समय एक भाला पकड़े रहता है और जब बोलकर बैठता है तो अपने सामने वह भाला गाड़ लेता है। वक्तृत्व-कला ही अफ्रीकीकी एकमात्र ललित कला है। वह अविराम

गतिसे बोलता है। उसके भाषणोंमें अर्थ कम और विस्तार ही ज्यादा होता है, मगर उनमें वन्य काव्यकी छटा रहती है। वह इमारत बुजुर्गोंकी चौपाल भी है और जब कामकाज खतम हो जाता है तब वे लकड़ीके चिकने और चमकदार लट्ठों पर बैठकर दिनकी गरमी वहीं बिताते हैं। दोपहरके वक्त उनकी स्त्रियां या बच्चे उनके लिए ताड़ी लाकर उनके घुटनों पर रख देते हैं और आदरसूचक ताली बजाते हैं। फिर खामोशी छा जाती है। यह शान्तिका समय होता है — नीरव, निःशब्द। सूर्य आकाशकी चोटी पर विराजमान होता है। उसका धवल प्रकाश पृथ्वी पर बरसता है; फूसका छप्पर बर्फकी तरह चमकता है। जंगल सुनसान होता है; सारी प्रकृति सोती है।

फिर सूर्य नीचे, नीचे और नीचे ढलने लगता है और उसकी तिरछी किरणें पेड़ोंमें से छन छनकर आने लगती हैं। शिकारी लौट आते हैं और उनके मित्र बाहर दौड़कर उनका इस तरह अभिवादन करते हैं, मानो वे बरसों बाद लौटे हों। बच्चोंकी-सी भाषामें वे धीमे धीमे बोलते हैं, उन्हें उनके प्यारके नामोंसे पुकारते हैं, उनसे दाहिने हाथ मिलाते हैं, उनके मुख पर दुलारसे हाथ फेरते हैं और होठोंके सिवा और सब प्रकारसे उनका आलिंगन करते हैं, क्योंकि अफ्रीकियोंको चुम्बनका ज्ञान नहीं है। इस प्रकार वे शाम होने तक खेलते, ठठोलियां करते और एक-दूसरेके साथ हंसते हैं। सूर्य लाल हो जाता है और हवाके रंगमें भी शामकी लाली आ जाती है और भीमकाय वृक्षोंकी गहरी छाया मार्गको ढक देती है। पृथ्वीसे विचित्र गंध उठती है; जुगनू चमकते हैं; जंगलसे झुंडके झुंड भूरे रंगके तोते निकल पड़ते हैं और चारों ओर इस प्रकार शोर मचाते हैं, मानो वे मनुष्यके पड़ोसमें रैनबसेरा करना चाहते हों। स्त्रियां अपने पतियोंके लिए उबले हुए केले या कन्द लाती हैं, जिन्हें लाल मिर्च मिलाकर तीखा और मछली या हरिणका मांस डालकर चटपटा बना दिया जाता है। और जब यह सादा खाना खतम होता है तब बड़ा ढोल धमाधम बजने लगता है; मीठी बांसुरियोंकी तान छिड़ जाती है; लड़के लड़कियां गाना शुरू कर देते हैं। एक

चौड़ी साफ बुहारी हुई जगह पर वे इकट्ठे हो जाते हैं और खुशीके मारे उछलते कूदते हैं; नौजवानोंकी एक कतार बन जाती है, औरतोंकी दूसरी; और वे दो लम्बी पंक्तियोंमें नाचते हैं। लालित्यमय हावभाव करते हुए वे कभी पीछे हटते हैं, कभी आगे बढते हैं और उनके हाथ आकाशमें थिरकते हैं। इसी समय अचानक दूरसे एक आवाज आती सुनाई पड़ती है, मानो कोई चीख रहा हो और जगलमें से कूदता उछलता मम्बो जम्बो आ धमकता है। उसके चेहरे पर डरावना नकाब होता है और उसके हाथमें चमड़ेका कोड़ा। उसका आना गोया उस पत्नीकी कमबख्तीका आ जाना है, जो अपने पतिको खाना बनाकर नही देती या उससे तीखे वचन बोलती है, क्योंकि मम्बो जम्बो स्त्रियोंके सदाचारका रखवाला है। अपराधी पत्नियां उसे अच्छी तरह जानती हैं और वे उसे देखकर रोती-चीखती अपने झोपड़ोंमें भाग जाती हैं। नाच फिर शुरू हो जाता है और अगर चादनी होती है तो रातभर बन्द नही होता।

यह जंगली जीवनका एक रोचक, सुन्दर भाग है। परन्तु जंगली जीवन यह नही है; यह तो उसका उतना ही ऊपरी हिस्सा है जितना चमड़ी पर लगाया हुआ रंग होता है। हम और किसी दिन उसी गावमें से निकलें तो देखेंगे : वहा एक झोपडेमें एक युवकका एक पैर काठमें बन्द है और दायां हाथ रस्सीसे गर्दनके साथ बंधा है। ताड़ीने, रातके नृत्यने और असुआके नयन-बाणोंने उसकी अक्ल पर पर्दा डाल दिया; वह पकडा गया और अब वह 'काठ' में बन्द है। अगर उसके संबंधी उसका जुर्माना न चुकायें तो वह गुलाम बनाकर बेच दिया जायगा; और यदि उस देशमें गुलामोंकी माग नहीं है तो उसे मार डाला जायगा। उसके हितैषी उसे फटकारते हैं, जो चीज पति बेचनेके लिए तैयार था उसे उसने चुरानेकी कोशिश क्यों की? और उसने यह क्यों नही समझ लिया कि असुआ कोई जाल है?

किसी और दिन चौपालका दृश्य जुआघरका-सा होता है। एक बूढ़ा, जो गांवका कोई बड़ा आदमी है, पासे फेंक रहा है। वह लगातार हार रहा है, लेकिन चूंकि वह बहुत ज्यादा पिये हुए है इसलिए वह नहीं

बनाती हैं, खेतोंका काम गुलाम करते हैं। बूढ़े बरामदेमें बैठकर हुक्का पीते या तंबाकू सूंघते हैं और कभी कभी कुरानका कोई पृष्ठ पढ़ते हैं। शामके समय बांसुरी और ढोलकी आवाज नहीं होती। बाजारके चौकमें सूखी टहनियोंका ढेर जलाकर रोशनी की जाती है और उस कसबेके लड़के उसके चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं। उनके हाथोंमें काठकी तख्तियां होती हैं और वे जोर-जोरसे अपने सबक रटना शुरू करते हैं। सबक रटते समय वे एक सधी हुई लयमें अपना शरीर झुलाते हैं; वे समझते हैं कि ऐसा करनेसे स्मरण-शक्तिको सहायता मिलती है। फिर एक लम्बी जोरदार सुरीली आवाज आती है। "नमाजके लिए आओ, नमाजके लिए आओ। अपने कल्याणके लिए उसकी रस्ममें आओ। ईश्वर महान है। वह अविनाशी है। नमाजके लिए आओ। तू बड़ा उदार है।"

ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूल अल्लाह।
अल्लाहो अकबर, अल्लाहो अकबर।*

यात्रियोंको ऐसे नगर काफिरोंके गांवोंसे कम दिलचस्प लग सकते हैं। वे उन्हें पूर्वी देशोंके जीवनकी घटिया-सी नकल मालूम होते हैं। परन्तु उनके दृश्य इतने रोचक भले ही न हों, उनके निवासी अधिक सुखी और अधिक अच्छे मनुष्य जरूर हैं। अब यहां हिंसक और बेईमानीके कामोंका न्याय रुपये लेन-देकर नहीं किया जाता। पति अब यहां अपने मित्रोंके लिए स्त्रियोंको फसानेकी कोशिश नहीं करते, व्यभिचार अब यहां दण्डनीय अपराध माना जाता है। पुरुष अब जुएमें अपने सम्बन्धियोंकी हार-जीत नहीं कर सकते और अपने सुदृढ़ शरीरको दांव पर नहीं लगा सकते। पुरुषोंको लड़ाईके नशेमें बुराई और अपराध करनेको नहीं ललचाया जा सकता। अब कोई बड़ा सरदार बहुतसी स्त्रियोंसे विवाह नहीं कर सकता और न उन्हें बोझा ढोनेवाले जानवरों या गुलामोंकी तरह रख सकता है।

* अल्लाह एक है। मुहम्मद अल्लाहका रसूल है। अल्लाह महान है।

कानूनसे प्रत्येक पत्नीको अपने पतिके प्रेममें समान भाग मिलता है; जवान बीबीकी खातिर बूढ़ी पत्नीको छोड़ देने या जलील करनेकी इजाजत नहीं है। प्रत्येक पत्नीका अपना घर होता है और पति तब तक अन्दर नहीं जा सकता जब तक वह दरवाजा न खटखटाये और 'बिस्मिल्लाह' का जवाब उसे न मिल जाय। हर बच्चेको अरबी पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है। यह सूडानकी धार्मिक और सरकारी भाषा है, जैसी कि मध्यकालीन यूरोपमें लैटिन थी। वे अपनी भाषा भी अरबी लिपिमें लिखते हैं, जैसे हम रोमन लिपिमें अपनी भाषा लिखते हैं। ऐसे देशोंमें दूसरे देशोंसे सम्बन्ध न रखनेकी—अलग रहनेकी नीति खतम हो जाती है। उनके द्वार दुनियाके तमाम मुसलमानोंके लिए खुले हैं और इस प्रकार उनका पूर्वी देशोंके साथ सम्बन्ध बना रहता है। यह एक उल्लेखनीय परिवर्तन है और उसे इतिहासमें स्थान मिलना चाहिये। यह आन्दोलन और भी दिलचस्प है, क्योंकि वह अब तक सक्रिय रूपमें जारी है।